वर्ष ५
पूर्णाङ्क ५२

गुरुकुल पत्रिका

नवम्बर
१९५२

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छ आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

विश्व-शान्ति में धर्म का स्थान

श्री स्वामी कृष्णानन्द

मानव जाति वर्तमान समय में इतिहास के अत्यन्त विकट काल मे से गुज़र रही है। लोभ, स्वार्थयुक्त संघर्षों तथा असन्तोष का इस समय सार्वभौम साम्राज्य हो गया है। सभी व्यक्ति, परिवार, समाज तथा जातियां आपस में विभक्त हो गयी हैं, उन मे आपस में कोई मेल-मिलाप नहीं रह गया। सम्पूर्ण जगत् मे जीवनोपयोगी अत्यन्त आवश्यक सामग्रियों का चिन्ताजनक अभाव हो गया है।

इस समस्या का समाधान

कोई भी व्यक्ति उपयुक्त दुरवस्था के अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता। परन्तु इसे दूर करने के लिए दो परस्पर विरोधी सुझाव उपस्थित किये जाते हैं। एक समूह धर्म को इस समस्त आपत्ति का कारण बतलाता है और धर्म को धोखा, वहम, अधम आदि दुष्नाम से स्मरण करता है और दूसरी ओर के लोग धर्म में अविश्वास को ही इन समस्त दुःखों का कारण बतलाते हैं।

समाधानों के विरोध का कारण

इन दो विरोधी सुझावों की उत्पत्ति दो भूलों से होती है—एक ज्ञान के क्षेत्र की भूल तथा दूसरी आचार के क्षेत्र की। पहिली भूल ने धर्म और विज्ञान में भारी अन्तर उत्पन्न कर दिया है; और दूसरी भूल ने परिवार, समाज आदि सम्पूर्ण मानवीय उद्देश्य तथा उद्योगों के क्षेत्र को दूषित कर दिया है।

धर्म, विज्ञान और दर्शन में विरोध उत्पन्न करने वाली आधारभूत भूल

(क) कोई सच्चा धर्म न तो केवल विश्वास का और नहीं कुछ न समझ में आने वाली भक्ति की क्रियाओं मात्र का नाम होता है। इन क्रियाओं का निर्माण पूर्ण वैज्ञानिक ढंग से होता है। मैंने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों तथा साधनाओं के अध्ययन में अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत किया है। यह धर्म सर्वथा वैज्ञानिक तथा क्रियात्मक है। इस में बहुत सी पूर्णतया विकसित साधनाओं का समावेश है। इन साधनाओं के विभिन्न मार्ग हैं जैसे मनोयोग, ज्ञानयोग, तन्त्रयोग, मन्त्रयोग, हठयोग इत्यादि। ये यौगिक मार्ग वैज्ञानिक शैली और युक्ति के उपयोग और निर्भ्रान्तता की दृष्टि से भौतिक विज्ञानों की युक्ति और शैली से किसी अंश में कम नहीं हैं। कोई निष्पक्ष वैज्ञानिक अथवा विचारक यदि इन उपायों को एक बार भी सच्चे दिल से अपनाए या परीक्षण करे तो वह इन उपायों के परिणाम में प्राप्त होने वाली उस सूक्ष्म बुद्धि पर सन्देह नहीं कर सकता; जो बुद्धि आध्यात्मिक सच्चाइयों को प्रत्यक्ष सम्पर्क कराती है और उनको दर्शाती है और मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को दैवीय गुणों—सत्य के स्वाभाविक आचरण की प्रवृत्ति, प्रेम, ब्रह्मचर्य में परिवर्तित कर देती है। धर्म, विज्ञान और दर्शन में कलह के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

१. धर्म के उपर्युक्त वैज्ञानिक क्रियात्मिक स्वरूप का अज्ञान।

२. धार्मिक व्यक्तियों का केवल विश्वास को अत्यधिक महत्त्व दे देना जिस के कारण वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों का विश्लेषणात्मक बुद्धि पर अधिक विश्वास करना।

(ख) ज्ञान के मुख्य निम्नलिखित तीन साधन हैं—

१. बाह्य इन्द्रियां,

२. विश्लेषणात्मक बुद्धि।

३. सूक्ष्मदर्शी बुद्धि जो प्रायः मनुष्य में सुप्त रहती है और जिसका विभिन्न विलक्षण धार्मिक साधनाओं से उद्बोधन किया जाता है।

(ग) धर्म, विज्ञान तथा दर्शन के अपने अपने निश्चित विलक्षण क्षेत्र—भौतिक विज्ञान मुख्यतया बाह्य इन्द्रियों तथा उनके सहायक यन्त्रों पर आश्रित है। विज्ञान में केवल बाह्य स्थूल घटनाओं के प्रकाश करने का ही सामर्थ्य है। इसका आधारभूत परमतत्व में प्रवेश नहीं है। केवल धर्म का ही सूक्ष्म शुद्ध बुद्धि के द्वारा उस परम तत्त्व में सीधा प्रवेश हो सकता है। दर्शन तार्किक बुद्धि का प्रयोग करता है। इसके द्वारा परम तत्त्व की झलक की ही बहुत दूर से अनुभूति हो सकती है। परन्तु कभी भी तर्क, विचार या दर्शन के द्वारा परम तत्त्व का अथवा बाह्य घटनाओं का भी प्रत्यक्ष बोध हो सकना सम्भव नहीं है। यदि न्यूटन की आंखें न होतीं तो उसे रंग का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता था। विश्लेषणात्मक बुद्धि का वास्तव में इतना ही कार्य है कि वह विज्ञान तथा धर्म की अपने अपने निश्चित क्षेत्रों में सहायता करे। यह कभी भी उनके क्षेत्रों की अनुभूतियों का खण्डन अथवा तिरस्कार कर सकने में समर्थ नहीं है। हां! इतना अवश्य है कि और वह दर्शन शास्त्र का उचित अधिकार है कि यदि उन क्षेत्रों की अनुभूतियों में पारस्परिक असामञ्जस्य हो तो वह उन के यथार्थ या सच्चे होने में सन्देह करे। दर्शन का कार्य विशेष ढंग से परम तत्त्व के विषय में विचार करना है; और विज्ञान तो केवल बाह्य घटनाओं से ही सम्बन्धित है। इस प्रकार भौतिक दर्शन या दार्शनिक विज्ञान शब्द परस्पर विरोधी भाव से दूषित हैं। इस सत्य को न जानने का ही यह परिणाम हुआ था कि धर्म ने विज्ञान को अपने बाह्य घटनाओं के क्षेत्र से निर्वासित करने का यत्न किया। इस लिए विज्ञान बाधित हुआ कि वह एकता तथा समरूपता की आध्यात्मिक सच्चाइयों से इनकार करे; जब कि वास्तव में यह उसके क्षेत्र तथा सामर्थ्य से बाहर की बात थी, क्योंकि उसका क्षेत्र बाह्य घटनाओं तक ही सीमित है। डार्विन ने संघर्ष को ही जीवन की आधारभूत सच्चाई स्वीकार किया। फ्रायड ने भक्ति तथा सेवा आदि उच्च धार्मिक सच्चाइयों को यौन विकार के कार्य मात्र निर्धारित किया। इस प्रकार विज्ञान ने विघटनात्मक अशान्ति उत्पन्न करने वाली आसुरी शक्तियों के लिए मार्ग साफ कर दिया और मनुष्य के मन में जीवन के भौतिक दृष्टिकोण के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया। क्या विज्ञान तथा क्या धर्म दोनों क्षेत्रों तथा मानव समाज के लिए यही हितकर होगा कि वे इस भूल को समझ और अपने निश्चित विलक्षण क्षेत्रों तक ही अपने निर्णयों को सीमित रखें; और अपने २ निश्चित क्षेत्रों में सत्य की खोज करने में एक दूसरे के सहायक हों! तभी यह जगत निरन्तर होने वाले भयानक युद्धों से बच सकेगा।

आचार विषयक भूल

धार्मिक मनुष्यों की भयंकर भूल—आचार सम्बन्धी धर्म के विधानों और भक्ति की साधनाओं को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। ये आपस में अत्यन्त मिली हुई हैं। आचार आध्यात्मिक ऊंचे सत्यों का व्यवहार क्षेत्र में प्रयोग मात्र ही है। क्योंकि

मुख्यतया आचार का क्षेत्र समाज है, इस लिए इस की यथार्थता तथा उपयोगिता जन साधारण की समझ में आ सकती है। जबकि सूक्ष्म सत्यों की अनुभूति थोड़े से विशेष उन्नत व्यक्तियों तक सीमित है। और यह मुख्यतया नैयक्तिक वस्तु है। अतः जब धर्म में विश्वास करने वाले तथा धर्म के रक्षक व्यक्तियों ने सांसारिक प्रलोभनों तथा अन्ध विश्वासों के कारण आचार शास्त्र की मर्यादाओं को उल्लंघन करना आरम्भ किया और धर्म के नाम से राजनीति में अनुचित लाभ उठाया जाने लगा तो जन साधारण धर्म के उच्च अधिकार के विषय में सन्देह शील हो गया। ऐसी स्थिति में उसका धार्मिक सचाइयों तथा भक्ति की साधनाओं को काल्पनिक तथा धोखा समझ कर उनका तिरस्कार करना उचित ही था। एक प्रकार से यह ठीक है कि यह जगत धार्मिक उच्च सत्यों के बिना तो निर्वाह कर सकता है; परन्तु सामाजिक सदाचार के बिना तो इसका सुखपूर्वक चलना असम्भव है। इस प्रकार उच्च आध्यात्मिक सचाइयों और भक्ति की साधनाओं का स्थान मानव आचार ने ले लिया।

२. भौतिक भूल-मानवीय आचार शास्त्र जिसका सम्बन्ध दैवीय आध्यात्मिक तथा धार्मिक सत्यों से टूट गया है; तथा जब इस आचार का उद्देश्य केवल विषय सुख सुविधा हो गया, तो उस में वह पवित्रता नहीं रह गयी और उस का अनुलंघनीय शासन भी मनुष्य पर शिथिल हो गया जो कि दैवीय आचार तथा कर्म का उचित अधिकार है। इस लिए मनुष्य ने मानव कृत आचार शास्त्र की मर्यादाओं को भंग करना आरम्भ कर दिया। इस भूल का कटु फल मानव जाति अब भोग रही है। हम लोग महात्मा गांधी की शिक्षाओं के मार्ग को भूल कर ही विश्व शान्ति को ऐसे अहिंसात्मक उपाय से प्राप्त कर लेना चाहते हैं जिस का सम्बन्ध धर्म (आध्यात्मिक क्रम, विचार तथा ध्येय पर आधारित) से विच्छिन्न हो गया हो। महात्मा गांधी जी की सफलता तथा आकर्षण का कारण उन का संसार के ईश्वरीय शासन में दृढ़ विश्वास था। उनके लिए सत्य ही परमेश्वर और परमेश्वर ही सत्य था। अहिंसा तो ईश्वर विश्वास व्यवहार क्षेत्र में प्रयोगमात्र है।

हमारे शान्ति स्थापित करने के सभी उपायों की आधार भूत भूल

इसी लिए हमारी कृषि, विभिन्न उद्योगों, और आर्थिक उन्नति के लिए किये गये प्रयत्न; साम्यवाद, समाजवाद, सम्प्रदायवाद, जनतन्त्रवाद, सेक्युलरिज्म आदि की विभिन्न विचारधाराएं और वर्ल्डफीडरेशन, यू० एन० ओ० आदि विश्व शान्ति के लिए बनाई गयी राजनैतिक अथवा पैसेफिस्ट, यूनैस्को आदि सांस्कृतिक संस्थाओं का तब तक बहुत कम लाभ हो सकता है, जब तक कि ये सब भौतिक लाभों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित रखती हैं। जब तक कि आचार की नितान्त उपेक्षा होती है; और अहिंसा मानवीय आचार की शक्ति हीनता के दोष से दूषित है; और आध्यात्मिक शासन तथा उद्देश्य को हमारे वैयक्तिक, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में सर्वोपरि महत्व नहीं दिया जाता; तब तक विश्व शान्ति का प्रश्न हल नहीं हो सकता।

निष्कर्ष

उस अवैज्ञानिक धर्म ने जो कि केवल अन्ध-विश्वास पर आश्रित था; जिस का सामाजिक आचार से सम्बन्ध टूट चुका था; इसी लिए जिस का दुरुपयोग राजनैतिक तथा अन्य भौतिक स्वार्थों के साधन के लिए ही किया जाने लगा था; और जो धार्मिक मौलिक सिद्धान्तों की उपेक्षा करने तथा गौण भेदों पर बल देने के कारण विकृत रूप को धारण कर चुका था ऐसे धर्म ने ही भौतिक विज्ञान तथा मानवीय आचार

को जन्म दिया। इन्होंने मनुष्य समाज के सभी उपयोगी क्षेत्रों को प्रभावित कर के विश्व शान्ति को भग कर दिया है। अब मनुष्य आध्यात्मिक उद्देश्य की सत्यता तथा आवश्यकता को अनुभव करने लग गया है। इस लिए वह सच्चा धर्म जो आध्यात्मिकता तथा आचार की मर्यादाओं को ऐसे वैज्ञानिक तथा क्रियात्मक साधनों पर निर्धारित करता है और जो आध्यात्मिक आचार शास्त्र पर पूरा बल देता है वह धर्म ही जगत् में शान्ति तथा सामञ्जस्य लाने का साधन बन सकता है।

उपयोगी उपायो का निर्देश

१ धार्मिक व्यक्तियों का कर्तव्य—सभी देशों के धार्मिक व्यक्ति यदि आपस में सहयोग करें तो यह महान् दैवीय कार्य सम्पन्न हो सकता है। यदि वे 'करो अथवा मरो' के आदर्श को अपना लें तभी मानव जाति विनाश से बच सकती है।

२ आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसन्धान की आवश्यकता—क्योंकि हमारी दृष्टि पूर्णतया भौतिकवादी हो चुकी है अतः आज तक जितना भी अनुसन्धान का कार्य हो रहा है वह सब भौतिक विज्ञान तक ही सीमित है। इस लिए इस समय एकदेशीय तथा सार्वदेशीय ऐसी बड़ी बड़ी अनुसन्धान संस्थाओं की परमावश्यकता है, जिन का सञ्चालन राज्य अथवा जनता के हाथ में हो और जो भौतिकवाद की प्रवृत्ति को रोकने के लिए आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसन्धान करें।

३ भारत का कर्तव्य—हिन्दु धर्म एक उच्च कोटि का वैज्ञानिक धर्म है, यह क्रियात्मक परीक्षणों के सत्य परिणामों पर आश्रित है। इस समय यह विश्व के सब धर्मों के आधारभूत सिद्धान्तों की एकता स्थापित करने के लिए बहुत उपयोगी है। बढ़ती हुई अशान्ति ने पाश्चात्य जगत् में सन्देह की दशा को उत्पन्न कर दिया है। मानव समाज आध्यात्मिक आधार तथा परम्परा वाले देश भारत की ओर पथ प्रदर्शन के लिए देख रहा है। मनु महाराज के शब्दों में—

एतद् श प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनु० २, २०

इस देश म उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से पृथिवी के सभी मानव अपने अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करें।'

यह आशा करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि भारत पाश्चात्य भौतिकवाद की प्रवृत्तियों में नहीं बह जाएगा और धार्मिक वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा राजनैतिक सभी क्षेत्रों के व्यक्ति आपस में सहयोग कर के दैवीय शान्ति तथा सामञ्जस्य की स्थिति को उत्पन्न करेंगे। ज्ञान तथा शक्ति के स्रोत सर्वशक्तिमान् भगवान् से प्रार्थना है कि व हमारे बुद्धियों को प्रकाशित करें हमें बल दें कि हम आध्यात्मिक मार्ग को दृढ़ता से अपना कर उस ओर अग्रसर हो सकें।

★

उत्तराखण्ड की मूर्ति-कला

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी

उत्तराखण्ड का जो वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में मिलता है उस से पता चलता है कि यह भूभाग प्राकृतिक सुषमा का आगार रहा है। इस प्राकृतिक सौंदर्य का श्रेय मुख्यतया नगाधिराज हिमालय को है जिसे महाकवि कालिदास ने ठीक ही 'अनन्तरत्नप्रभव' तथा 'गिरिराज' संज्ञाएं प्रदान की हैं। हिमालय में ही देवों का निवास रह गया है। यहीं प्रसिद्ध तीर्थ बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, कैलास और मानसरोवर स्थित हैं, जिनके महिमा गान से हमारा साहित्य भरा पड़ा है। पुण्यतोया यमुना, भागीरथी, अलकनन्दा, क्षीर गंगा, धौली गंगा, भीलांगना, राम गंगा, सरयू और काली नदी के अतिरिक्त सिन्धु तथा उसकी कई सहायक नदियां उत्तराखंड से निकल कर एक बड़े भूमि भाग को उर्वर करती हैं। इन नदियों के तट पर हमारी संस्कृति एक दीर्घकाल तक फूलती फलती रही। कितने ही प्राचीन नगर इन्हीं नदियों के तट पर बसे हुए थे, जिनके अवशेष आज भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

उत्तराखंड की पावन एवं मनोरम भूमि ललित कलाओं के विकास के लिये बड़ी उपयुक्त रही है। शताब्दियों तक यहां साहित्य, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य एवं मूर्तिकला विकसित होती रहीं। संस्कृत की अनेक सरस रचनायें इसी प्रदेश की देन हैं। इस भूमि पर संगीत के प्रचलन का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि किन्नर, यक्ष और गन्धर्व, जो संगीत के प्रतिनिधि माने जाते हैं, उत्तराखंड के ही निवासी कहे गये हैं। आज भी यहां उनके कुछ वंशजों में प्राचीन संगीत की परम्परा विद्यमान है। उत्तराखंड चित्रकला के विकास का भी महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। जिन विविध स्थानों में पहाड़ी चित्रकला प्रस्फुटित एवं विकसित होती रही, उनमें जम्मू बसोली, पूंछ, चम्बा, गुलेर कांगड़ा, सुकेत और गढ़वाल मुख्य हैं। कुछ स्थानों के भित्तिचित्र तो कला के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं। स्थापत्य तथा मूर्तिकला का भी इस पर्वतीय प्रदेश में एक लम्बे समय तक विकास होता रहा।

यहां हम केवल उत्तराखंड की मूर्तिकला के संबंध में चर्चा करेंगे। यों तो मूर्तिकला सम्बन्धी प्रचुर सामग्री उत्तराखंड के विभिन्न स्थानों में बिखरी पड़ी है पर कूर्मांचल एवं केदारखंड के जो स्थान मूर्तिकला के विकास के प्रमुख केन्द्र रहे हैं वे बैजनाथ, बागेश्वर, कटारमल, जागेश्वर, द्वाराहाट, आदि बद्री, बिनसर, रानीहाट और लाखामंडल हैं। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

बैजनाथ

यह स्थान अलमोड़ा जिले में अलमोड़ा से ४१ मील उत्तर की ओर स्थित है। यहां के निकट गरुड़ नगर तक मोटर जाती है। वहां से बैजनाथ के प्राचीन कलावशेष थोड़ी ही दूर रह जाते हैं। मन्दिरों का एक समूह बैजनाथ सरोवर के तट पर है, जहां से इन मन्दिरों का दृश्य बड़ा सुन्दर लगता है। मुख्य मन्दिर के अन्दर पार्वती की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा है, जिसे देख कर दर्शक मुग्ध हो जाते हैं। पार्वती की मूर्ति के अगल-बगल शिव पार्वती, लक्ष्मीनारायण, गणेश सूर्य आदि की लघु प्रतिमाएं रक्खी हैं।

मुख्य मन्दिर के पास ही केदारनाथ का मन्दिर है, जिस में शिव की प्रतिमा के अतिरिक्त गणेश, ब्रह्मा, महिषमर्दिनी आदि की कलापूर्ण मूर्तियां हैं। केदारनाथ मन्दिर के अतिरिक्त मुख्य मन्दिर के चारों ओर १५ अन्य लघु मन्दिर हैं। इन में से कुछ में तो मूर्तियां हैं और शेष में नहीं। मंदिर शिखर शैली के हैं और उनके आमलक बड़े सुन्दर लगते हैं। इन मन्दिरों तथा उनके आस-पास से प्राप्त कुछ मूर्तियों को एक गोदाम में रख दिया गया है, जिसे पुरातत्त्व विभाग ने हाल में तैयार कराया है। इन में स्मितमुद्रा

में कुबेर की मूर्ति अत्यन्त आकर्षक है। कुबेर ललितासन में बैठे हैं। उनके दाएं हाथ में मधुपात्र तथा बाएं में थैली है, जिसे एक नेवले के रूप में दिखाया गया है। कुबेर की इस मूर्ति की चौकी पर ई० आठवीं शती का एक लेख भी उत्कीर्ण है। एक अन्य उल्लेखनीय शिलापट्ट पर लक्ष्मी तथ सरस्वती को एक साथ दिखाया गया है। इनके अतिरिक्त आलिगन मुद्रा में शिव पार्वती, सूर्य माहेश्वरी हरिहर, महिष मर्दिनी आदि की भी कई कला पूर्ण मूर्तिया यहा सुरक्षित हैं। इन मूर्तियों का समय ई० आठवीं से ग्यारहवीं शती तक है।

बैजनाथ के मुख्य मन्दिर समूह से कुछ दूर पर सत्यनारायण, रकसदेवा (राक्षसदेव) तथा लक्ष्मी के मन्दिर हैं। इन में भी अनेक सुन्दर मूर्तिया सगृहीत हैं। सत्यनारायण मन्दिर की चतुर्भु जी विष्णु प्रतिमा विशेष रूप से दर्शनीय है। यह काले पालिशदार पत्थर की बनी है और बहुत विशाल है। इसके च रो ओर अनेक देवी-देवताओं का चित्रण है।

बैजनाथ से लगभग डेढ़ म ल उत्तर भ्रामरी देवी का मन्दिर है। यह । भी अनेक प्राचीन मूर्तिया रक्खी हैं।

बागेश्वर

यह स्थान बैजनाथ से १४ मील पूर्व सरयू नदी पर बसा है। बैजनाथ से यहा तक का माग बहुत सीधा है। इसके प्राचीन नाम वागीश्वर' और 'व्याघ्रेश्वर' भी मिलते हैं। इन नामों के सम्बन्ध म अनेक जनश्रुतिया प्रचलित हैं। बागेश्वर के प्रधान मन्दिर में शिवलिंग के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मूर्तिया हैं। इन में से शिव पार्वती की एक मूर्ति की कला उत्कृष्ट कोटि की है। दोनों के अग प्रत्यगों की बनावट तथा मुख का स्मित भाव अत्यन्त आकर्षक है। मन्दिर के बाहर चतुर्मु खी शिवलिंग तथा दशावतार सयुक्त एक शिलापट्ट पर दर्शनीय हैं।

प्रधान मन्दिर के समीप ही भैरव जी का मन्दिर है, जिसमें शिव पार्वती की प्रतिमाओं के अतिरिक्त शेषशायी विष्णु, चामुण्डा, गणेश आदि की प्रतिमाएं हैं।

सरयू नदी की परली ओर सेलह नौला' है जिस में चार नामों से युक्त एक शिलाखण्ड है। जल के अधिनायक के रूप में नाग का पूजन इस ओर बहुत मिलता है और अनेक नौलों (जल के स्थानों) में नाग मूर्तिया उपलब्ध होती हैं। सरयू के इसी ओर हीरपन्थेश्वर त्रियुगी नारायण, बेनीमाधव आदि के मान्दर हैं। इन में भी उत्तर मध्यकालीन कला के अनेक अवशेष मिलते हैं।

कटारमल

यह स्थान अलमोड़ा से लगभग ६ मील पश्चिम में है। अलमोड़ा से ७ मील कोसी तक मोटर द्वारा जा सकते हैं और वहां से पहाड के ऊपर चढ कर कटारमल तक। उत्तराखण्ड का महत्वपूर्ण सूर्य मन्दिर इसी स्थान पर है। प्रधान मन्दिर का ऊपरी अश टूट गया है। उस के अन्दर की बड़ी मूर्ति सूर्य की है जो ऊँचाई में ३ फुट ८ इञ्च तथा चौडाई में २ फुट है। सूय भगवान् कमल के आसन पर बैठे हैं। उन के सिर पर अलकृत मुकुट तथा पाछे प्रभामण्डल है। मूर्ति की चौकी पर सारथी वरुण तथा सप्ताश्व अकित हैं। यह मूर्ति भूरे रग के पत्थर की है और ईस्वी बारहवीं शती की कृति है।

इस मन्दिर का मण्डप काफी बड़ा है। इस में शिव-पार्वती, लक्ष्मीनारायण, नृसिंह आदि की मूर्तिया हैं। मन्दिर के दरवाजे लकड़ी के हैं। इनकी ऊंचाई ८ फुट तथा चौड़ाई ३ फुट है। इन दरवाजों पर देवी देवताओं, पशु पक्षियों तथा कमलादि के अलकरण अत्यन्त सुन्दरता के साथ उकेरे गये हैं।

मुख्य मन्दिर के समीप अनेक लघु मन्दिर हैं। इन में भी मूर्ति कला के कुछ सुन्दर नमूने सगृहीत हैं।

जागेश्वर

अलमोड़ा से १६ मील पूर्व जागेश्वर है। यहां प्राचीन मन्दिरों की शृंखला बहुत बड़ी है। मुख्य मन्दिर जागेश्वर महादेव का है। इस में विभिन्न स्वरूपों मे शिव के दर्शन हैं। अन्य मन्दिर महामृत्युञ्जय, कैलाशपति, डिंडेश्वर, पुष्ट देवी, भैरवनाथ आदि के हैं। इतने देवी-देवताओं के मन्दिर तथा उन की विभिन्न मूर्तियां को देख कर आश्चर्य होता है। वास्तव मे जागेश्वर उत्तर मध्यक लीन मूर्ति कला के विकास का एक बड़ा केन्द्र रहा है। पौराणिक देवी देवताओं को व्यापक रूप में मूर्त रूप दे कर उन्हें विषय अलंकारों एव अन्य उपादानों से मंडित करना जागेश्वर के कलाकारों की प्रिय वस्तु थी, जिस का प्रत्यक्ष दर्शन यहा की मूर्ति कला में पाते हैं।

द्वाराहाट

यह स्थान रानीखेत से १३ मील उत्तर है। यहां मन्दिरों की संख्या बहुत बड़ी है। मन्दिरों के तीन समूह कचेहरी, मनिया और रतनदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सभी मन्दिर शिखर शैली के हैं जिन के ऊपर आमलक मिलता है। इन में से कुछ ही मन्दिरों में प्रतिमाएं हैं; शेष खाली हैं। चौथा गूजरदेव मन्दिर है जो कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। इस के चारों ओर दीवालों पर उत्कीर्ण शिलापट्ट लगे हैं। इन शिलापट्टों पर विविध आकर्षक मुद्राओं में स्त्रियों और पुरुषों के चित्रण हैं। कुछ पर पुरुषों का अलंकरण तथा कुछ पर हाथियों की श्रेणियां दिखाई गई हैं। यह सब बड़ी सजीवता के साथ चित्रित किया गया है।

द्वाराहाट में हरसिद्धिदेवी, लक्ष्मीनारायण, मृत्युञ्जय, वनदेव, कुलदेवी आदि अन्य प्राचीन मन्दिर भी हैं। इन में कुछ मूर्तियां कला की सुन्दर कृति हैं। इन मूर्तियों का निर्माण-काल लगभग आठवीं से तेरहवीं शती तक का है।

आदि बद्री

यह गढ़वाल जिले के परगना चांदपुर में है और कर्ण प्रयाग से लगभग ११ मील दक्षिण पड़ता है। यहां १६ प्राचीन मन्दिरों का समूह है। जनश्रुति है कि ये मन्दिर शंकराचार्य के द्वारा बनवाये गये। इन मन्दिरों में शैव एवं वैष्णव धर्म सम्बन्धी प्रतिमाएं बड़ी संख्या में संगृहीत हैं।

बिनसर

यह स्थान पौड़ी से ४२ मील पूर्व है और यहां पहुँचने का रास्ता भी कठिन है। बिनसर का प्राचीन 'बिन्देश्वर' था जो यहा के मुख्य देव की सज्ञा थी। बिनसर के मन्दिर के चारों ओर जो प्राचीन मूर्तियां बिखरी पड़ी हैं इन्हें देखने से पता चलता है कि ई० सातवीं से ले कर बारहवीं शती तक यह स्थान मूर्ति कला का महत्वपूर्ण केन्द्र था। इन मूर्तियों में अलंकृत जटाजूट से युक्त एकमुख शिवलिंग, अभिलिखित महिषमर्दिनी का मूर्ति, त्रिपुरान्तक, विष्णु तथा पार्वती की प्रतिमा अत्यन्त कलापूर्ण हैं। इन मूर्तियों में कलाकारों ने सजावट और अलंकारिकता की ओर कम ध्यान दे कर भाव एवं सजीवता को विशेषता दी है।

राणीहाट

गढ़वाल का पुराना राजधानी श्रीनगर से कोई तीन मील दूर अलकनन्दा के परली पार टेहरी जिले में यह गाव स्थित है। यहा राजराजेश्वरी का प्राचीन मन्दिर है। राजवंश की कुलदेवी होने के कारण इस को उक्त संज्ञा हुई। कहा जाता है कि पहले इस मन्दिर के चारों ओर ३६० मन्दिर थे। अब भी यहा अनेक लघु मन्दिरों के अवशेष विद्यमान हैं।

मुख्य मन्दिर के मण्डप एव विशाल प्रांगण में

अनेक मूर्तिया रक्खी हैं। ये महिषमर्दिनी, शिव-पार्वती, कार्तिकेय, गणेश, विष्णु नवग्रह आदि की हैं। इन का समय ११ वीं-१२ वीं शती है। इन में महिषमर्दिनी की विशाल मूर्ति मुरैले पर आरूढ कार्तिकेय की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है।

मन्दिर में वर्ष में द वार बलि हातो है। इस मन्दिर के उत्तर में महेद्राचल पर्वत है। कहा जाता है कि इसी पर्वत को समुद्र-मन्थन के समय देवों और असुरों ने मथानी के रूप में प्रयुक्त किया था। अर्जुन द्वारा पशुपतास्त्र की प्राप्ति भो यहीं बताई जाती है।

लाखामण्डल

यह स्थान देहरादून जिले के जौनसार परगने में है। देहरादून से ५८ मील चकरोता तक मोटर द्वारा जा सकते हैं और वहा से २२ माल पूव लाखामण्डल है। यह स्थान मूर्तियों का भडार है। जन-श्रुति है कि यहा लाखों मूर्तिया मिलने के कारण इस का नाम लाखामण्डल हुआ। यह स्थान यमुना नदी के निकट ही बसा है और यहा का प्राकृतिक सौन्दय निराला है।

लाखामण्डल मे एक ही प्राचीन मन्दिर है परन्तु उस के भीतर कला की अपार राशि भरी है। शिव, दुर्गा, सप्तमातृका, कुबेर, लक्ष्मीनारायण, कार्तिकेय, सूर्य आदि की अनेक सुन्दर प्रतिमाए यहा सगृहीत हैं। मन्दिर के बाहर छठी शती की दो कायपरिमाण प्रतिमाए हैं। ये जय-विजय की हैं, जो हाथ मे दण्ड धारण किये हैं। मन्दिर की बाहरी दीवारों पर गगा-लक्ष्मी तथा महिषमर्दिनी की प्रतिमाए लगी हैं।

अन्य मूर्तियों को एक गोदाम म सुरक्षित किया गया है। इन का सख्या बहुत बड़ी है और इन का समय ई० पाचवी से ले कर लगभग बारहवीं शती तक है। इन म कुछ महत्वपूर्ण अभिलेख भी हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तराखण्ड में गुप्त काल से ले कर लगभग सोलहवीं शती तक मूर्ति कला का विकास विभिन्न स्थानों में होता रहा। ये मूर्तिया सिलेटी भूरे, मटमेले या काले पत्थरों की बनी हैं। ये पत्थर स्थानीय सुविधा के अनुसार कलाकारों द्वारा चुने गये। उत्तराखण्ड की इस विशाल कलाराशि का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है। इसके द्वारा विभिन्न कालों मे इस प्रदेश की धार्मिक, सामाजिक एव आर्थिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकेगा। हर्ष की बात है कि गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने हाल म आने यहा एक संग्रहालय की व्यवस्था कर दी है जिस म उत्तराखण्ड की महत्वपूर्ण कला सामग्री सगृहीत की जा रही है। आशा है कि यह सग्रहालय शीघ्र ही उत्तराखण्ड का प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र बनेगा और प्रादेशिक इतिहास एव कला के अध्ययन एव अन्वेषण के कार्य को आगे बढ़ाने में सहायक होगा।

✶

बालक और माता

श्री कुंजबिहारी सिंह एम. ए.

संसार में बालक के लिए माता का स्थान सब से महत्वपूर्ण है। संसार का प्रकाश देखने के पहले ही से उसका साथ माता से रहता है; वह माता का इस काय के लिए बहुत ही ऋणी है गर्भावस्था में माता अपने भोजन, वस्त्र तथा आराम की व्यवस्था गर्भस्थ भ्रूण की आवश्यकतानुसार ही करती है।

वास्तव मे प्रकृति ने माता ही को शरीर, मन तथा भावना से इस योग्य बना रखा है कि वह बालक का स्वागत संसार में कर सके। पेट से बाहर आने पर सब से प्रथम बालक को मा के स्तन की आवश्यकता होता है। वह अमृत का स्रोत उसके जीवन का प्रमुख अनुभव बनता है। उसकी चाह होने पर वह रोता है तथा उसके मिल जाने पर उसमे अ त्मतुष्टि आ जाती है। अपने शरीर के रक्त-मास से निर्मित यह दुग्ध माता अपने बालक को ही हृदय से पिला सकती है। इस से उसके शरीर की शक्ति का भी क्षय होता है परन्तु बच्चे के लिए वह सब कुछ सहन कर लेती है। अत्यधिक प्रेम के समय मा के स्तनों से स्वतः धार बह निकलती है।

मा के दूध के साथ बालक की एक बड़ी ही जबर्दस्त ममता सी बँध जाती है। वह इसके अभाव को अत्यधिक महसूस करता है। उसके जीवन पर इसका बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ता है। उसके मस्तिष्क में यह बात आ जाती है कि कहीं ऐसा न हो कि यह हमें न मिले। चुसकने की आदत स्वभावतः बड़ी प्रिय होती है। स्तन की जगह जब बच्चे के मुह में छोटी सी बोतल जिस में रबर की नली लगी हो दे दी जाय तब भी वह बड़े प्रेम से उसे चुसकता है। इसके अतिरिक्त बच्चा अपने हाथ तथा पैरों के अंगूठे अथवा अपने खिलौनों को भी चुसकता देखा गया है। बड़े २ लड़के भी अपने अगूठे और पेन्सिल चुसकते हैं। बड़े लोगों को चाकलेट तथा अन्य मिठाइयों के चुसकने में आनन्द आता है। सिगरेट पीने में भी एक प्रकार के चुसकने की क्रिया होती है। जब हम थक जाते हैं, या जब हमें कोई काम अच्छा नहीं लगता या किसी परिस्थिति में पड़ जाने पर हमारे मस्तिष्क में भार सा लगता है तब हम धीरे २ कोई चीज चुसकने लगते हैं। इस से हमारे मन को सन्तोष सा हो जाता है। चुसकने का यह स्वाभाविक क्रिया बच्चा के लिए तो बहुत ही आवश्यक है। यदि उन्हें बचपन में पूर्ण प्यार न मिला, या अपने पोषण की वस्तुएं भी समुचित मात्रा में न मिली तो ऐसे लड़के बहुत अधिक देर तक और बार २ अपने अगूठे चूसते हैं।

बोतल के दूध पर जीने वाले बालक को स्वाभाविक भोजन की तृप्ति नहीं होती। वह तो किसी के प्यार तथा गरम वक्ष के अनुभव के साथ के दुग्धपान की आवश्यकता महसूस करता है। ऐसा लड़का प्रायः अगूठे पीने का अभ्यासी देखा गया है तथा वह खाने-पीने की चीजों में अनावश्यक आसक्ति दिखलाता है।

मातृभाव का विस्तृत रूप

माता का हृदय सन्तान के लिए सदा ही सन्तप्त रहता है। उसके त्याग और तपस्या की तुलना और किसी से नहीं की जा सकती। माता प्रेम मूर्ति कही जाती है। हम मातृभूमि तथा मातृभाषा से बंधे स्थायी भावों से परिचित हैं। इनके लिए बलिदान का आदर्श महान् है। इनके विकास तथा उत्थान में योग देना हमारा अपना कर्तव्य सा हो जाता है। मातृभूमि की सन्तान होने के नाते हम में भाई तथा बहिन का सा प्रेम होना स्वाभाविक है। राष्ट्रीयता की भावना की उत्पत्ति के लिए पारस्परिक सहयोग, सहानुभूति तथा एकता की अनुभूति अत्यन्त आवश्यक है। माता के प्रेम तथा स्निग्धता की अनुभूति जिसे नहीं मिली उसे मातृभूमि से भी कोई विशेष भावात्मक आकर्षण न

इधर न वह अपने स्वार्थ की परिधि से बाहर निकल कर दूसरों से मातृत्व का सम्बन्ध ही जोड़ सकता है।

जिन बच्चों की माताएं मर जाती हैं वे घर के लिए एक समस्या बन जाते हैं। पिता अपने को बच्चों की आवश्यकता पूर्ति में असमर्थ पाता है। ५ वर्ष की अवस्था के बच्चों को तो माता के बिना पाल रखना और जिलाना तो और भी कठिन है।

माता की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता

मा केवल दूध और भोजन ही बच्चे को नहीं देती, उसके मानसिक तथा भावात्मक विकास में भी उसका बड़ा हाथ है। माता की गोद ऐसी जगह है जहां पहुँच कर बच्चे का सब दुःख भाग जाता है। जब कभी चोट आती है तो माता उसे आकर सहलाती है, जब उसे कभी मानसिक कष्ट होता है तो मा उसे सान्त्वना देती है जब कभी बच्चे के आनन्द की बात होती है तो मा उसके साथ प्रसन्नता प्रगट करती है। जब कभी भी प्रेम का भूखा बालक मा की गोद की शरण लेता है तो वह सदा ही वहां विशाल हृदय पाता है। जब बच्चा बीमार होता है या उसके शरीर में कोई कष्ट होता है तो मा की नींद हराम हो जाती है। दिन भर के काम से थकी मा बेटे के लिए सदा ही ताजी रहती है। रात को अपनी नींद का विचार न कर वह उसे अच्छी अच्छी सरस कहानियां सुनाया करती है।

माता के कारण ही बच्चे को आत्म तुष्टि का आभास होता है। वह यह समझता है कि घर में उसके कार्यों तथा जीवन विकास में कोई दिलचस्पी लेने वाला है। घर में कोई ऐसा व्यक्ति है जो उसे अपना कहने वाला है, दुःख में, सुख में कभी भी वहां स्थान है तथा एक बार बुरा काम तथा बुरा व्यवहार करने पर भी वह पराया नहीं कहलायेगा। उसकी शक्तियों के विकास में मा का बड़ा हाथ रहता है। उसकी टूटी-फूटी तुतली भाषा की ओर कौन ध्यान दे? उसके लड़खड़ाते पांव को कौन सहारा दे? उसे बोलने और चलने में धीरे २ धैर्य के साथ कौन आगे बढ़ावे? माता के अतिरिक्त और किसी में इतना धीरता तथा शक्ति कहां?

अन्य स्त्रियां

प्रायः माता के न रहने पर और कोई स्त्री प्रेम से बच्चे को पालती है। दादी चाची मौसी आदि बच्चों के पालने का भार अपने ऊपर ले लेती हैं। प्रायः इन में दूसरों के बच्चों में ममत्व उत्पन्न करने की शक्ति का अभाव रहता है या शरीर से ये इस कार्य में असमर्थ सी रहती हैं। बच्चा सुगमता से पूरी तरह इन्हें माता के स्थान पर ग्रहण नहीं कर पाता। परिणाम यह होता है कि ये अपने त्याग तथा परिश्रम के स्थान पर बच्चों से जब उदासीनता पाती हैं तो इनका हृदय दुःखी होता है। अपनी मां की तरह इन में धैर्य नहीं रह पाता ये बदला चाहती हैं। प्रेम के स्थान पर बच्चों से ये प्रेम प्रदर्शन की आशा रखती हैं।

विमाता

जब पिता दूसरी शादी कर लेता है तो बच्चे की दशा और भी बुरी हो जाती है। नई माता यदि कुमारी है तो बच्चे के ममत्व से बहुत कुछ अनभिज्ञ है। फिर वह अपने में अधिक व्यस्त रहती है, वह बच्चे को भार स्वरूप समझती है। यदि उसे मातृत्व का अनुभव तथा ज्ञान है तो भी वह दूसरे के बच्चे से इस कारण घृणा करती है कि वह बालक उसकी सौत का लड़का है। सौत से स्त्री की स्वभावतः ईर्ष्या रहती है भले ही ईर्ष्या का यह पात्र समाप्त हो चुका हो। नई मां नई परिस्थिति में अपने को सम्हालने तथा अपना क्षेत्र बनाने में अधिक ध्यान देती है। बच्चा परित्यक्त सा रहता है। ऐसी दशा में वह उदासीन घुमक्कड़, परेशान

रहता है। प्रायः चिल्लाने तथा मारपीट में वह व्यस्त रहता है।

उदाहरण

हमारे एक साथी अध्यापक के यहां एक बालक रहता है जिसको हम यह समझते थे कि उन्हीं का लड़का है। बाद में उसका पूरा वर्णन उनके मुख से ज्ञात हुआ। बालक की माता बचपन में ही मर चुकी थी। पिता ने दूसरा शादी कर ली। दूसरी मा से भी कोई बालक न हुआ। माता यों भी प्रकाश्य रूप से बच्चे से घृणा न करती थी। हर प्रकार से उससे अपना प्रेम दर्शाती थी। पिता भी बालक के प्रति अधिक उदार तथा प्रयत्नशील था। ध्यान रखने की बात है कि प्रायः विमाता तथा पिता के इस प्रकार के व्यवहार देखने में नहीं आते। इतना होने पर भी बालक का मन घर में न लगता। बालकों से उसने सुन लिया कि यह उसकी असली मा नहीं है। वह अपनी माता की खोज में जैसे रहता। वह घर से निकल जाता और केवल बुलाने पर ही घर आता। बड़े होने पर वह अधिक घुमक्कड़ हो गया। उदास सा रहता था। पिता उस से बहुत तंग आ गया। उसने लड़के को पाठशाला के छात्रावास में भर्ती करा दिया। वहां भी उसमें कोई सुधार न हुआ। वह प्रायः पाठशाला से अनुपस्थित भी रहता। एक दिन उसका पिता हमारे साथी से मिला और बच्चे की बातें कहते २ वह रो पड़ा। इन्होंने कहा कि लड़के को हमारे पास भेज दीजिए। लड़का इनके घर आ गया। ये स्वयं अध्यापक हैं तथा बच्चों से रुचि रखते हैं। उनकी स्त्री भी बड़े सुलझे मस्तिष्क की हैं। इन्होंने लड़के को प्रेम तथा सहानुभूति के साथ कई सामाजिक कार्यों में भी लगाया धीरे २ लड़का अच्छा बनने लगा और अब उसने इस वर्ष नवीं कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। यहां ध्यान रखने की बात है कि विमाता का नाम भी बुरा है तथा उस में हृदय के प्यार का भी अभाव सा रहता है। यदि बालक को सच्ची बात बता दी जाय और विमाता प्रेम का बदला न पाकर सच्चे हृदय से उस से प्रेम करे तो बच्चे के विकास में उचित सहायता मिले।

माता के आवश्यक गुण

स्वाभाविक है कि बालक के सम्बन्ध में माता उपर्युक्त कथन के अनुसार तभी खरी उतर सकती है जब उसके हृदय में अन्य प्रकार के विकार न हों। प्रायः माताएं पति को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती हैं। बालक दुग्ध-पान से उनकी शक्ति क्षीण करता है बच्चे के होने से उन में सौन्दर्य तथा आकर्षण की कमी हो जाया करती है। पति यदि सौन्दर्य-प्रिय या विलासी प्रकृति का आदमी है तो वह ऐसी स्त्री से खिच सा जाता है। ऐसी परिस्थिति में मा अपनी विशेष अवस्था के लिए बच्चे को उत्तरदायी ठहराती है। उसके अचेतन मन में उसकी ओर से घृणा उत्पन्न हो जाती है यद्यपि उसका प्रकाश्य मन इस बात को नहीं स्वीकार कर सकता। उसमें बालक की ओर से उस स्वाभाविक व्यवहार की कमी आ जाती है जिसके कारण वह मा कहलाने योग्य है। इसकी बालक के जीवन पर बड़ी गम्भीर प्रतिक्रिया होती है।

चरित्रहीन स्त्रियां मां कहलाने के योग्य नहीं हो सकतीं। उनका अपने शृङ्गार बनाव में ही मन लगा रहता है। वे बाह्य आकर्षण को प्रधानता देती हैं। साथ ही साथ समाज पर इसका प्रभाव डालने में उनकी मानसिक तथा भावात्मक शक्तियां व्यय हो जाती हैं। बच्चा उनके रास्ते का कांटा हो जाता है। वे उसको दूर रखना चाहती हैं। बच्चों की बातें उन्हें अच्छी नहीं लगतीं। उनका हठ तथा प्रेम-भूख उन्हें बहुत ही बुरा लगता है।

वेद में मरुत और उनकी युद्ध कला

श्री विश्वबन्धु

वेदों में अनेक स्थलों पर युद्ध का वर्णन है। स्थान-स्थान पर वीर मरुतों के गीत गाए गये हैं। यही कारण है कि वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानने वाली आर्य जाति युद्ध प्रिय रही है और अपने जीवन को भी संग्राम मानती रही है। वीर और विजयी को आर्य बड़ी श्रद्धा से देखते थे। वीर पूजा आर्य जाति का सर्व प्रथम लक्षण था। वीर मरुत आदर्श सैनिकों के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे शुभ्र हैं, घोर रूप वाले हैं, सच्चे क्षत्रिय हैं, हिंसकों के विनाशक हैं। वे पर्वतों तक को चलायमान कर देते हैं, समुद्र तक को लांघ जाते हैं। वेद के शब्दों में— ये शुभ्रा घोर वर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः, मरुद्भिरग्न आगहि'। य 'ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णव. मरुद्भिरग्न आगहि'। जब वे शत्रु पर हमला करते हैं तब पृथ्वी भी दुर्बल राजा की भांति कांप उठती है येषामज्मेषु पृथिवि जुजुर्वां विश्वपति इव भिया यामेषु रेजते।' देश के संकट काल में प्रजा के आह्वान करने पर वे शीघ्र ही राष्ट्र रक्षा के लिए चले आते हैं और शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करते हैं। यही कारण है कि वेदों में उन की स्तुति जी भर कर गाई गई है। कवियों की सब स्तुतियां और उद्गाथाओं के समस्त गीत उन्हीं को प्राप्त होते हैं। मरुत शत्रुहा हैं, वृत्रहा हैं, उन का सर्वाधिक स्वागत उचित ही है। यदि मरुत न हों तो दस्यु आर्यों का जीवन संकट में डाल दें। मरुत सदैव सजग रहते हैं। वे युद्ध के अग्रणी हैं। अतएव शांति के समय वे ही सोमपान के अधिकारी माने गए हैं।

सात पुरियों के सन्त्रासक दस्यु इन्द्र द्वारा दण्डित होते हैं। शुष्ण, पिप्रु, शम्बर आदि प्रभूत बलशाली शत्रुओं को मरुत पराजित कर के मार डालते हैं। अग्नि, मित्र, वरुण, अर्यमा शूर हैं, योद्धा हैं। उन्हें युद्ध क्षेत्र में उपस्थित देख कर शत्रुओं का साहस छूट जाता है।

वेदों में जहां सांसारिक सुख, ऐश्वर्य, धन,

रोगी माताएं भी बालक के भावात्मक विकास में ठेस पहुँचाती हैं। उन्हें अपनी परेशानी तथा उलझनों से समय मिलना कठिन हो जाता है। उनमें सहन शक्ति की कमी रहती है; उन में उदारता तथा प्रेम की गुंजाइश नहीं। बच्चों को वे भी घर से दूर रखना चाहती हैं।

स्वस्थ तथा सच्चरित्र माताएं ही पूजा के योग्य हैं। बालक महान् पुरुष हो कर भी उन से अलग नहीं रहना चाहता। कभी २ माता से अत्याधिक अनुराग बालक को विकास की अगली सीढ़ी पर पहुँचने में बाधक बनता है। वह उसी अवस्था में बंध सा जाता है और फिर बाद में माता के न रहने पर असहाय सा हो जाता है। अनेकों पुरुष अपनी स्त्री में माता का प्रतिरूप देखते हैं। स्त्री के साथ वे माता का सा अवलम्बन तथा आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। वे प्रेम के कारण नहीं वरन् अपनी असहायावस्था की अनुभूति के कारण स्त्री से अलग नहीं रह सकते। यह उन के भावात्मक विकास की कमी का ही परिणाम है, वे माता के सम्बन्ध के सुनहरे तागों को नहीं काट पाए। उन्होंने अभी स्वतन्त्र होना नहीं सीखा।

★

सम्पत्ति, गोधन, भूमि, दीर्घ जीवन आदि की प्रार्थना परक ऋचाएं हैं वहा ऐसी ऋचाओं की कमी नहीं है, जिन में युद्ध में विजय पाने के लिए द्वेष्टियों के सहार के लिए या उन से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है। वेद वीरों को उत्साहित करते हुए कहते हैं 'स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कम्भे। युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः' हे वीरा शत्रुओं का हरा कर भगा देने के लिए और उन के वीरों को रोकने के लिए तुम्हारे शस्त्रास्त्र दृढ हों। तुम्हारी सेना का सगठन ऐसा हो कि उस को देखते ही मुख से प्रशसा के शब्द निकलें। 'परा ह यत् स्थिर हथ नरो वर्तयथा गुरु। वियायन वनिनः पृथिव्या व्याशा पर्वतानां' हे नरो तुम स्थिर से स्थिर वस्तु को भी विचलित कर सकते हो। पृथ्वी के जगलों को चीरते हुए चले जाओ, पहाड़ो की दिशाओं को भी काटते हुए चले जाओ। नहि व शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्य न रिशादसः। युष्माकमस्तु तविषी राना युजा रुद्रास नू चिदाधृषे'। तुम आकाश के किसी भी छोर पर हो, भूमि के किसी भी कोने में हो, शत्रु तुम्हें न पकड़ सके। तुम्हारी सेना ऐसी सुसगठित और विशाल हो कि वह प्रबल से प्रबल घर्षण कर सके। 'उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदवीभयन्त मानुषाः।' तुम रथों पर आरुढ़ हो जाओ, घोड़ो पर सवार हो जाओ। तुम्हारी रण यात्रा को सुन कर पृथिवी तक के कान खड़े हो जाये, सब शत्रु भय से कापने लग जाये।

'रथोत्तम रथाना' वीर मरुतों का प्रिय विशेषण है जिस का प्रयोग विभिन्न रूपों में वैदिक साहित्य और उस के परवर्ती साहित्य मे पाया जाता है। वीर मरुत रथ पर चढ़ कर युद्ध करते हैं। रथ के चक्रों की निर्माण कला आर्यों को न जाने कब से ज्ञात हो चुकी थी। मरुत यद्यपि विशेषतः ऋष्टि, वाशी, वज्र आदि का प्रयोग करते हैं, फिर भी धनुष और बाण भी उन के आयुध हैं। युद्ध के अतिरिक्त अन्य दैनिक व्यवहारों में भी धनुष का उल्लेख मिलता है। सीता और द्रौपदी के स्वयवर में विवाह की शर्त धनुष ही रक्खी गई थी। देश की सर्व श्रेष्ठ राज पुत्री प्रसिद्ध धन्वी को ही जयमाल समर्पित कर सकती थी।

किन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि मरुत रथ और धनुष के अतिरिक्त और चीजों से अपरिचित हैं। वेदों में विमान और शतघ्नी तोपों के भी वर्णन मिलते हैं। 'क्रीडं शर्धो मारुत अनर्वाण रथे शुभम् कण्वा अभि प्रगायतः'। अर्थात् हे वीर मेधावी पुरुषो, ऐसे यान का निर्माण करो जो बिना घोड़ो के वायु के वेग से आकाश मे चलने वाला है। ऋग्वेद मरुतों को ही सम्बोधन करता हुआ कहता है —' आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्के रथेभियात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः। आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पतथा सुमायाः। १-८८-१। हे वीरो तुम ऐसे विमानों पर चढ़ कर जाओ जो बिजली से चलते हों, जो चमकदार हों, जिन में शस्त्रास्त्र भरे हों, जिन के पख बहुत बड़े-बड़े हों, जिन में भरपूर रसद इकट्ठी हो, उन विमानों में बैठ कर तुम पक्षियों की भाति उड़े चले जाओ। रामायण में पुष्पक विमान की कथा सर्व विदित है। भोज सञ्जीवनी में जो कि महाराजा भोज निर्मित ग्रन्थ है और इस समय भी बड़ोदा की लाइब्रेरी में मौजूद है उस में विमान बनाने की कला का सविस्तार वर्णन किया गया है। यहा यह प्रश्न किया जा सकता है कि फिर आज की भाति बड़े बड़े आविष्कार क्यों नहीं किए गए। उत्तर स्पष्ट है, मनु ने महयन्त्र प्रवर्तन को पाप बताया है। क्योंकि जो आर्य जाति विश्व कल्याण हित यज्ञों द्वारा वायु और जल को भी शुद्ध करने की कामना रखती थी वह आज की भाति विष के समान धुआं उगलने वाले कारखाने और यन्त्रों का निर्माण

कर के मानव जाति को क्यों सन्तप्त करती। आज इन यन्त्रों के आविष्कारों से जलवायु दूषित हो जाने से नाना प्रकार के रोग और बीमारियां फैल रहा हैं और संसार दुःखमय बना हुआ है अतः वैदिक युग में वज्र और धनुष का ही प्रयोग प्रधानतः किया जाता था। धनुष के निरन्तर खींचते रहने से वक्षःस्थल का कर्कश हो जाना और भुजाओं में गड्ढे पड़ जाना वीर की पहचान मानी जाती थी।

सेनाओं को चार भागों में विभक्त कर के लड़ना रामायण काल से आर्यों को ज्ञात था। रावण की चतुरंग सेना का वर्णन करते हुए रामायण में लिखा है कि उस में गजारोही हैं, रथी हैं, अश्व हैं और फिर सैनिक हैं। सांची स्तूप की दीवारों पर जो युद्ध के चित्र खुदे हैं उन से भी ज्ञात होता है कि उन दिनों हाथी भारतीयों की सेना का प्रधान अवयव बन चुका था। इसी भाव के कुछ चित्र अजन्ता और कार्लो की दीवारों पर भी बने हैं। जिन में हाथी प्रमुख भाग लेते हुए अङ्कित किये गये हैं।

महान् सिकन्दर का मुकाबला करने के लिए पुरुराज २०० हाथी, ३०० रथ ४००० अश्व और २०००० पैदल ले कर लड़ने गया था। कहते हैं कि उस की हार का प्रधान कारण ये हाथी ही थे यूनानी घुड़सवारों के भालों की चोट खाकर हाथी बिगड़ गये और अपनी ही सेना को कुचलने लगे। इसी प्रकार की गड़बड़ हाथियों ने कई स्थानों पर की है जिस से युद्ध का पासा ही पलट गया।

भारत पर चढ़ाई करते समय बाबर अपनी सेना में हाथी नहीं लाया था, पर पिछले मुगल राजाओं को हाथी से अटूट प्रेम हो गया था।

वैदिक काल में अर्ध रथी, रथी, महारथी, रथों पर बैठ कर लड़ना अपना गौरव समझते थे, पर पृथ्वीराज के समय तक आते आते भारतीय लोग हाथी पर बैठ कर युद्ध क्षेत्र में जाना अपना गौरव समझने लगे थे। जबकि विदेशी, आक्रमण करने के लिए सदा अच्छे-अच्छे घोड़े चुनते थे। पानीपत की तीसरी लड़ाई में पेशवा का पुत्र विश्वासराव हाथी पर सवार था जबकि अहमदशाह अब्दाली घोड़े पर चढ़ कर फुर्ती से चारों ओर सेना का सञ्चालन कर रहा था।

हाथियों के सम्बन्ध में कई अर्थशास्त्रियों ने लिखा है कि राजा की विजय हाथियों पर ही निर्भर है। क्या ही अच्छा होता कि उक्त अर्थशास्त्री को पुरुराज की भागती हुई सेना का दृश्य देखने को मिल जाता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों और उस के परवर्ती साहित्य में युद्धों के रोमाञ्चकारी वर्णन आते हैं। भगवद्गीता में लिखा है कि धर्म युद्ध से बढ़ कर क्षत्रिय के लिए और कुछ नहीं है। जिन्हें भाग्यवशात् युद्ध प्राप्त हो वे धन्य हैं। युद्ध स्वर्ग का खुला हुआ द्वार है। आचार्यों की बड़ी संख्या जहां जीवन को तृणवत् समझने की शिक्षा देती हुई 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्' की ओर संकेत करती है वहां ऐसे भी आचार्य हैं जो युद्ध को अत्यन्त घृणा और चिन्ता के साथ देखते हैं। उन के मतानुसार युद्धों को वीरोचित भावों के रूप में देखना चाहिए। वेद के मरुत सर्व साधारण के मनों में वीरता की भावना भरने वाले हैं। यह संसार एक युद्ध भूमि है। मनुष्य को अपने जीवन में बड़े बड़े समरों में से गुजरना पड़ता है। चारों ओर विघ्न बाधा रूपी शत्रु सदैव नष्ट करने को तैयार रहते हैं। इधर आंतरिक क्षेत्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी शत्रु सेना मन पर आक्रमण करने को सदा तैयार है, तो उधर भयंकर बीमारियों और व्याधियों की सेना शरीर पर आक्रमण करने का प्रोग्राम बना रही है। इधर सिंह, व्याघ्र, सर्पादि भयानक जन्तु अपना ग्रास बनाने को तैयार खड़े हैं, उधर अति वृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प

आदि अनेक दैवी विपत्तियां उसे समाप्त करना चाहती हैं। इधर धूर्त वञ्चक छली लोग फँसाने की चेष्टा कर रहे हैं उधर अत्याचारी तलवार ले कर सामने खडे हैं। पग पग पर विघ्नरूपी चट्टाने हैं बाधा रूपी खाइयां हैं। इन सब को मनुष्य को पार करना है। इसलिए वेद ने कहा 'अश्मनवती रीयते संरभध्व उत्तिष्ठत प्रतरता सखाय' हे मनुष्यों जैसे नदी का प्रवाह तटों को गिराता हुआ बाधों को तोड़ता हुआ चट्टानों को लांघता हुआ आगे बढता जाता है वैसे ही मनुष्य का भी सब विघ्नों को परास्त करते हुए आगे ही आगे बढ़ते जाना है। परन्तु इस के लिए मन में प्रबल वीर भावना की आवश्यकता है उसी वीर भावना को जागृत करने के उद्देश्य से वेदों में स्थान-स्थान पर सूक्तों के सूक्त राक्षसों के सहार के वर्णन से भरे हैं जहां हम इन से बाह्य राक्षसों के विध्वस का सन्देश लेना है वहां आन्तरिक राक्षसों के सहार की वीर भावनाओं को भी जागृत करना है। बाहर की भांति अन्दर भी निरन्तर देवासुर सग्राम होता रहता है। इस लिए वेद का सन्देश है कि जगत् को और अपने आप को राक्षस हीन कर के देव तुल्य बनाओ।

इस प्रकार वेद के युद्ध वर्णनों से हम भौतिक विजय तथा आध्यात्मक विजय दोनों प्रकार की भावनाओं को जागृत कर सकते हैं।

वनस्पति घी में रङ्ग

(पृ० ११० का शेष)

से पहिचाना जा सकता है मिलावट के रूप में उपयोग करने की दृष्टि से पत्र हरित वाले वनस्पति घी को यदि कोई गरम कर के या धूप में रख कर नीरग करने का प्रयत्न करे तो उस में उसे सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि ऐसा करने से वह घी बिल्कुल नीरग नहीं होगा, उस का रंग विकृत हो कर केवल कुछ बदल जायगा और पारजम्बु प्रकाश में या सूर्य की धूप में भी उस की गहरी अरुण दीप्ति स्पष्ट झलकने लगेगी पत्र हरित के अणु में मैगनेशियम होता है जिस की सूक्ष्म रासायनिक परीक्षा की जा सकती है। क्लोरोफिल वाले घी की यह सूक्ष्म रासायनिक परीक्षा (माइक्रोकैमिकल टैस्ट) की जाय तो बहुत शीघ्र मैगनेशियम की उपस्थिति ज्ञात हो जाती है। शुद्ध घी में यदि क्लोरोफिल वाला वनस्पति घी एक प्रतिशत भी मिलाया हुआ हो तो इस सूक्ष्म रासायनिक परीक्षा से वह भी आसानी से पकड़ा जा सकता है। यद्यपि जान्तिक कोयले या फलर की मिट्टी (फुलर्स अर्थ) के साथ विधिपूर्वक क्रिया कर के, अन्य दूसरे रगों की तरह, पत्र हरित को भी लगभग पूर्णतया नष्ट किया जा सकता है तथापि उस घी में जो कुछ भी थोड़ा बहुत पत्र हरित रह जाता है उस के कारण पारजम्बु प्रकाश में या सूर्य की धूप में पिघले हुए घी की अरुण दीप्ति वाली परीक्षा उस में भली भांति हो सकती है। इस के अतिरिक्त इस प्रकार रङ्ग को नष्ट करने की क्रिया बहुत कठिन एवं महगी होती है। इस कारण बड़े पमाने पर इस प्रकार की विधियों से पत्र हरित के रग को नष्ट करने का साहस कोई नहीं कर सकता। ('करेन्ट साइन्स' से साभार)।

—अनु० श्री सत्यव्रत गुप्त, वे० अ०, एम० ए०।

वनस्पति घी में रंग

श्री व्य० पुन्ताम्बेकर और श्री पो० रामचन्द्र राव[1]

शुद्ध घी म वनस्पति घी आदि उद्रजन-प्रवेशित स्नेह-द्रव्यों (=हाइड्रोजिनेटिड फैट्स) की मिलावट न हो सके इस दृष्टि से अनेक रंगीन ऐन्द्रिक पदार्थों से उन स्नेह-द्रव्यों को रंगने का प्रयत्न किया गया, पर किसी न किसी कारणवश उनमें से कोई भी इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया। अब यह देखा जा चुका है कि उक्त स्नेह द्रव्यों की शुद्ध घी में मिलावट को रोकने के दृष्टिकोण से उन्हें रंगने के लिए पत्र हरित (क्लारोफिल) का प्रयोग सन्तोषजनक सिद्ध हुआ है। वस्तुतः व्यवहार में यह आवश्यक नहीं है कि रासायनिक दृष्ट से बिल्कुल शुद्ध रग का प्रयोग किया जाय, क्योंकि साधारण रूप में प्राप्त लगभग सारा पत्र-हरित और तत्सम्बन्धी रग इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए भली भांति प्रयुक्त हो सकता है। यह देखा गया है कि प्रत्येक एक हजार पौंड स्नेह-द्रव्य में एक पौंड रग डालने से सुन्दर पीला सा हरा रग आ जाता है। लौविबौण्ड टिण्टो-मीटर द्वारा परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि इस रंग के आधे सैण्टीमीटर कोष (= सैल) मे ३० पीले और ४ नीले (कण) होते हैं।

पत्र-हरित कितनी भी बड़ी मात्रा मे भली भांति सुलभ हो सकता है और यह पूर्ण रूप से एक खाद्य पदार्थ है। यह सिद्ध हो चुका है कि हानिकारक न होने के अतिरिक्त यह मानव-शरीर की विधायक और विघातक (मैटाबोलिक) क्रियाओं में उपचय (औक्सिडेशन) के सहायक के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार 'यह एक जीवनप्रद पदार्थ है और मनुष्य के उपयोगी जीवन को दीर्घायुष्य प्रदान करने का एक मुख्य साधन है।' इस के कारण पिघले हुए स्नेह-द्रव्यों को सूर्य की धूप में या विशेषत. पारजम्बु (अल्ट्रा वॉयलेट) प्रकाश में रखने पर उन मे एक खास प्रकार की अरुण दीप्ति पैदा हो जाती है। इस लिए इस का एक अन्य लाभ यह भी है कि (यदि रंगीन कृत्रिम वनस्पति घी शुद्ध घी मे मिलाया हुआ हो ता) इस अरुण दीप्ति को देख कर पत्र-हरित की उपस्थिति सरलता से ज्ञात हो सकती है। इस रग की प्राप्ति के लिए साधारण वनस्पति—पालक (स्पाइनेशिया ओलेरेशिया या स्पिनाक) के पत्ते बहुत उपयुक्त स्रोत हैं। इस के सुखाये पत्तों से पाच प्रतिशत साधारण हरा रग प्राप्त हो जाता है, जिस में आठ प्रतिशत नमी होती है। बिच्छू बूटी (अर्टिका पर्विफ्लोरा, इण्डियन स्टिंगिंग नैटल) और क्लीरोडेनड्रौन इन्फौ-र्चुनेटम जैसे कुछ अन्य जगली पौधों से भी यह रग सुविधा से प्राप्त किया जा सकता है। इन से साढ़े तीन प्रतिशत साधारण रग निकल आता है। विल्स्टा-टर और स्टौल की विधि से अस्सी प्रतिशत ऐसिटोन या नब्बे प्रतिशत अलकोहल का प्रयोग करते हुए इन पदार्थों से यह रग सरलता से निकाला जा सकता है।

पत्र-हरित से रंगा हुआ कोई भी वनस्पति घी मिलावट के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि शुद्ध घी में इस की दस प्रतिशत जैसी कम से कम मात्रा भी सारे घी को अपनी विशेष हरी सी आभा दे देती है, जिस के कारण उसे सरलता

(शेष पृष्ठ १११ पर)

१ विद्वान् अन्वेष्टा, फौरेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट, देहरादून।

इन्द्र, दिव्य प्रकाश का प्रदाता

श्री अरविन्द

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ४

सुरू॰ कृत्नु मूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूम स द्यविद्यवि ॥ १ ॥

जो पूर्ण रूपों का निर्माता है और जो गोदोहक के लिए एक खूब दूध देने वाली गौ के समान है उस इन्द्र को वृद्धि के लिये हम प्रतिदिन पुकारते हैं ॥ १ ॥

उप न॰ सवना गहि सोमस्य सोमपा पिब ।
गोदा इद्र वतो मद ॥ २ ॥

हमारी सोमरस की हवियों के पास आ । हे सोम रसों के पीने वाले ! तू सोमरस का पान कर तेरे दिव्य आनन्द का मद सचमुच प्रकाश का देने वाला है ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमाना विद्याम सुमतिनाम् ।
मा नो अतिख्य आगहि ॥ ३ ।

तब अर्थात् तेरे सोमपान के पश्चात् तेरे चरम सुविचारों में से कुछ को हम जान पावें । उन को हमें अतिक्रमण कर के मत दर्शा आ ॥ ३ ॥

परे हि विग्रमस्तृतमिन्द्र पृच्छा विपश्चितम्
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

आओ, उस इन्द्र से प्रश्न कर जो स्पष्टद्रष्टा-मन वाला है, जो बड़ा शक्तिशाली है, जो अपराभूत है जो तेरे सखाओं के लिये उत्तमतर सुख को लाया है ॥ ४ ॥

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥

और हमारे अवरोधक भी हमें कहें कि 'नहीं, इन्द्र में अपनी क्रियाशीलता को निहित करते हुए तुम अन्य क्षेत्रों में भी निकल कर आगे बढ़ते जाओ ॥ ५ ॥

उत न सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टय ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

और हे कार्यसाधक ! योद्धा, कर्म के कर्त्ता हमें पूर्ण सौभाग्यशाली कहें हम इन्द्र की शांति में ही रहें ॥ ६ ।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् ।
पतयन्मन्दयत्सखम् । ७ ॥

तीव्रता के लिए तीव्र को ला, अपने सखा को आनन्दित करने वाले इन्द्र को मार्ग में आगे ले जाता हुआ तू इस यज्ञश्री को ले आ जो कि मनुष्य को मदयुक्त कर देने वाली है ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभव ।
प्रा वो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

इस सोमरस का पान कर के हे सैंकड़ो क्रियाओं वाले ! तू आवरणकर्ताओं का वध कर डालने वाला हो गया है और तूने समृद्ध मन को उस की समृद्धियों में रक्षित किया है ॥ ८ ॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

अपनी समृद्धियों म समृद्ध हुए उस तुझ का हे इन्द्र। हे सैंकड़ों क्रियाओं वाले। अपने प्राप्त ऐश्वर्य के सुरक्षित उपभोग के लिये हम और अधिक समृद्ध करते हैं। ६॥

यो रायो ऽवनिर्महान्त्सुपार सुन्वत सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत। १०॥

जो अपने विशाल रूप में एक दिव्य सुख का धाम है, सोमप्रदाता का ऐसा सखा है कि उसे सुरक्षित रूप से पार कर देता है, उस इन्द्र के प्रति गान करो॥ १०॥

भाष्य

विश्वामित्र का पुत्र मधुच्छन्दस् ऋषि सोमरस की हवि को लेकर इन्द्र का आवाहन कर रहा है, इन्द्र है प्रकाशमय मन का अधिपति, इन्द्र का आवाहन वह इस लिए कर रहा है कि वह प्रकाश मे वृद्धिगत हो सके। इस सूक्त में प्रयुक्त सब प्रतीक सामुदायिक यज्ञ के प्रतीक हैं। इस सूक्त का प्रतिपाद्य विषय यह है कि इन्द्र आकर सोम का, अमरता के रस का, पान करे और उस सोमपान के द्वारा उस के अन्दर बल तथा आनन्द की वृद्धि हो और उसके परिणाम-स्वरूप मनुष्य में प्रकाश का उदय हो जाय जिस से कि उस के आन्तरिक ज्ञान में आने वाली बाधाए हट जाय और वह उन्मुक्त मन के उच्चतम वैभवों को प्राप्त कर ले।

पर यह सोम क्या वस्तु है जिसे कहीं कहीं अमृत, ग्रीक का अम्ब्रोशिया भी कहा गया है मानो कि यह अपने आप में अमरता का सार पदार्थ हो? सोम है, अलङ्कारिक रूप में वर्णित किया हुआ दिव्य सुख आनन्द-तत्व, जिसमें से, वैदिक विचार के अनुसार, मनुष्य की सत्ता हुई है, यह मानसिक जीवन निकला है। एक गुप्त आनन्द है जो सत्ता का आधार है, सत्ता को धारण करने वाला व तावरण या आकाश है, सत्ता का लगभग सार-तत्त्व ही है। इस आनन्द के लिए तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि यह दिव्य सुख का आकाश है जो यदि न हो तो किसी का भी अस्तित्व न रहे।

देव सोम हवि के बुलाये जाने पर, आ कर आनन्द का अपना भाग ग्रहण करते हैं और उस दिव्य आनन्द के बल में वे मनुष्य के अन्दर प्रवृद्ध होते हैं मनुष्य को उस की उच्चतम सम्भावनाओं तक ऊंचा उठा देते हैं और उसे दिव्य उच्च अनुभूतियों को पा सकने योग्य बना देते हैं। जो अपने अन्दर के आनन्द को हवि बना कर दिव्य शक्तियों के लिए अर्पित नहीं कर देते, बल्कि अपने आप को इन्द्रियों तथा निम्न जीवन के लिये सुरक्षित रखना पसन्द करते हैं वे देवों के पूजक नहीं किन्तु पणियों के पूजक हैं, जो पणि इन्द्रिय चेतना के अधिपति हैं इस चेतना की सीमित क्रिया ओ म व्यवहार करने वाले हैं जो रहस्यपूर्ण सोमरस का नहा निचोड़ते हैं, विशुद्ध हवि को अर्पित नहीं करते हैं, पवित्र गान को नहा गाते हैं।

पर इस सूक्त म जो विचार दिया गया है वह हमारी आतरिक प्रगति की एक विशेष अवस्था से सम्बन्ध रखता है। यह अवस्था वह है जब कि पणियों का अतिक्रमण किया जा चुका है और 'वृत्र' या 'आच्छादक' भी जो कि हम से हमारी पूर्ण शक्तियों तथा क्रियाओं को पृथक् किये रखता है और 'वल' भी जो कि प्रकाश को हम से रोके रखता है, पराजित हो चुके हैं। परन्तु अब भी कुछ ऐसी शक्तियां हैं जो हमारी पूर्णता के मार्ग में बाधक बन कर आ खड़ी होती हैं। वे हैं सीमा में बांधने वाली शक्तियां, अव-

रोधक या निन्दक जो यद्यपि समग्र रूप में किरणों का छिपा या बलों को रोक तो नहीं लेते, पर तो भी हमारी आत्म-अभिव्यक्ति की त्रुटियों पर निरन्तर बल देने के द्वारा वे यह यत्न करते हैं कि इस (आत्म-अभिव्यक्ति) का क्षेत्र समित हो जाय और वे अब तक सिद्ध हुए आंतरिक विकास को आगे आने वाले विकास के लिए बाधक बना देते हैं। तो मधुच्छन्दस् ऋषि इन्द्र का आवाहन कर रहा है कि वह आकर इस दोष को निवृत्त कर दे और इस के स्थान पर एक वृद्धिशील प्रकाश को स्थिर कर दे।

वह तत्त्व जो यहां 'इन्द्र' नाम से सूचित किया गया है मनः शक्ति है जो कि प्राणमय चेतना की सीमितताओं और धुंधलेपन से मुक्त है। यह वह प्रकाशमयी प्रज्ञा है जो विचार या क्रिया के उन सत्य और पूर्ण रूपों को निर्मित करती है जो प्राण के आवेगों से विकृत नहीं होते, इन्द्रियों के मिथ्याभावों से प्रतिहत नहीं होते। उपमा यहां तक गाय की दी गया है जो गाय गोदोग्धा को प्रचुर मात्रा में दूध देने वाल है, दोग्ध्री है। 'गो' शब्द के संस्कृत में दोनों अर्थ होते हैं एक गाय और दूसरा प्रकाश की किरण। इस प्रकार 'गौएं' जो दुही जाती हैं सूर्य की गौएं हैं, जो सूर्य है स्वतः प्रकाशयुक्त और अन्तर्ज्ञानयुक्त मन का अधिपति, या वे गौएं उषा की गौएं हैं, जो उषा वह देवी है जो सौर महिमा को अभिव्यक्त किया करती है। ऋषि इन्द्र से यह कामना कर रहा है कि हे इन्द्र! तू मेरे पास आ और अपनी पूर्णतर क्रियाशीलता द्वारा अपनी किरणों का अत्यधिक मात्रा में मेरे ग्रहणशील मन पर डालता हुआ तू मेरे अन्दर दिन प्रतिदिन सत्य के इस प्रकाश की वृद्धि को करता जा। (मन्त्र १)

तभी यह सम्भव होता है कि उन बाधाओं को जिन्हें अवरोधक शक्तियां अब भी आग्रहपूर्वक बीच में डाले हुए हैं, तोड़ फोड़ कर, परे जाकर ज्ञान के उन अन्तिम तत्त्वों के कुछ अंश तक पहुँचा सके जो कि प्रकाशमय प्रज्ञा में ही सम्भव है, सत्य विचार, सत्य संवेदन शालताएं —यह है 'सुमति' शब्द का पूर्ण अभिप्राय।... 'सुमति' है विचारों के अन्दर प्रकाश का होना, साथ ही वह आत्मा में होने वाला प्रकाश-युक्त प्रसन्नता और दयालुता भी है, परन्तु इस सन्दर्भ में अर्थ का बल सत्य विचार पर है न कि मनोभावों पर।... इन्द्र को केवल प्रकाश ही नहीं होना चाहिये किन्तु सत्य विचार-रूपों का रच-यिता, सुरूपकृत्नु भी होना चाहिए। (मन्त्र ३)

आगे ऋषि सामुदायिक योग के अपने किसी साथी को ओर अभिमुख होके या सम्भवतः अपने ही मन को सम्बोधन करता हुआ, उसे (साथी को या अपने मन को) प्रोत्साहित करता है कि आ, तू इन उलटे सुझावों की बाधा को जो तेरे विरोध में खड़ी की गई है पार कर के आगे बढ़ जा और दिव्य प्रज्ञा (इन्द्र) से पूछ पूछ कर उस सर्वोच्च सुख तक पहुँच जा जिसे कि इस प्रज्ञा द्वारा अन्य पहले भी पा चुके हैं। क्योंकि यह वह प्रज्ञा है जो स्पष्टतया विवेक कर सकती है और जो सब गड़-बड़ियों व धुंधलेपनों को, जो अब तक भी विद्यमान हैं, हल कर सकती या हटा सकती है।

इस के आगे उन फलों का वर्णन किया गया है जिन्हें पाने की ऋषि अभीप्सा करता है। इस पूर्ण-तर प्रकाश के हो जाने से, जो कि मानसिक ज्ञान के अन्तिम रूपों के आ जाने पर खुल कर प्रकट हो जाता है, यह होगा कि बाधा की शक्तियां सन्तुष्ट हो जायगी तथा स्वयमेव आगे से हट जायगी तथा और अधिक उन्नति और नवीन प्रकाश पूर्ण प्रगतियों को आने के लिए रास्ता दे देंगी। फलतः वे कहेंगी,

लो, अब तुम्हें वह अधिकार दिया जाता है जिस अधिकार को अब तक हम उचित तौर से ही तुम्हें नहीं दे रहे थीं तो अब न केवल उन क्षेत्रों में जिन्हें तुम पहले ही जीत चुकी हो बल्कि अन्य क्षेत्रों में तथा अछूते पड़े प्रदेशों में अपनी विजयशील यात्रा को जारी करो अपना यह क्रिया पूर्ण रूप से दिव्य प्रज्ञा को समर्पित करो न कि अपनी निम्न शक्तियों को। क्योंकि यह महत्तर समर्पण ही है जो तुम्हें महत्तर अधिकार प्रदान करता है।'

आरत' शब्द जिस का अर्थ गति करना या यत्न करना है अपने सजातीय 'अरि', 'अर्य' 'आर्य', 'अरति', 'अरण' शब्दों की तरह वेद के केन्द्रभूत विचार को अभिव्यक्त करने वाला है। 'अर्' धातु हमेशा प्रयत्न की या संघर्ष की गति को अथवा सर्वातिशायी उच्चता की या श्रेष्ठता की अवस्था को निर्दिष्ट करती है, यह नाव खेना, हल चलाना, युद्ध करना, ऊपर उठाना, ऊपर चढ़ना अर्थों में प्रयुक्त की जाती है। तो 'आर्य' वह मनुष्य है जो वैदिक क्रिया द्वारा आन्तर या बाह्य 'कर्म' अथवा 'अपस' द्वारा, जो कि देवों के प्रति यज्ञरूप होता है, अपने आप को परिपूर्ण करने की इच्छा रखता है। पर यह कर्म एक यात्रा, एक प्रमाण, एक युद्ध, एक ऊर्ध्वमुख आरोहण के रूप में भी चित्रित किया गया है। आर्य मनुष्य ऊंचाइयों की तरफ जाने का यत्न करता करता है अपने प्रयाण में जो प्रयाण कि एक साथ एक अग्रगति और ऊर्ध्वारोहण दोनों हैं। संघर्ष कर के अपने मार्ग को बनाता है। यही उसका आर्यत्व है 'अर्' धातु से ही निकला एक ग्रीक शब्द को प्रयुक्त करें तो यही उसका 'अरेटे' गुण है। 'आरत' का अवशिष्ट वाक्यांश के साथ मिला कर यह अनुवाद किया जा सकता है कि निकल चलो और संघर्ष कर के अन्य क्षेत्रों में आगे बढ़ते जाओ।' (मन्त्र ५)

जैसे अवरोधक शक्तियां सन्तुष्ट हो गई हैं और उन्होंने रास्ता दे दिया है वैसे ही मनुष्य के आध्यात्मिक सहयोगियों को भी सन्तुष्ट हो कर अन्ततः अपने उस कार्य की पूर्ति घोषित करनी चाहिये जो पूर्ति मानवीय आनन्द की पूर्णता द्वारा सचिह्न हुई है और तब आत्मा इन्द्र की शांति में विश्राम पायगी जो शांति दिव्य प्रकाश के साथ आती है—इन्द्र की शांति अर्थात् उस पूर्णता प्राप्त मनोवृत्ति की शांति जो कि सर्वपरि पूर्ण चेतना और दिव्य आनन्द की ऊंचाइयों पर स्थित है। (मन्त्र ६)

इस लिए दिव्य आनन्द वेग युक्त तथा तीव्र क्रिया आने के लिए आधार में उडेला गया है और इन्द्र को उसकी तीव्रताओं में सहायक होने के लिए समर्पित कर दिया गया है। दिव्य प्रज्ञा अब समर्थ होगी कि वह अभी तक अपूर्ण रही अपनी यात्रा में आगे बढ़ सके और वह देव के मित्र के प्रति आरोहण करती हुई आनन्द की नवीन शक्तियों के रूप में प्रतिदान करेगी। अर्थात् इन्द्र अब आगे बढ़ सकेगा तथा सोमपान के बदले में सत्ता को ऊपर से आने वाला आनन्द प्रदान कर सकेगा। (मन्त्र ७)

ऋषि मधुच्छन्दस् अपने कथन को जारी रखता हुआ आगे कहता है कि यद्यपि वह प्रज्ञा पहले से ही इस प्रकार समृद्ध और विविधतया सम्भृत हुई हुई है तो भी हम अवरोधकों को और वृत्रों को हटा कर इस की समृद्धि की शक्ति को और अधिक वृद्धिगत करना चाहते हैं ताकि हम निश्चिततया तथा भरपूर रूप में अपने ऐश्वर्य की प्राप्तियां हो सकें। (मन्त्र ८)

क्योंकि यह प्रकाश, अपनी सम्पूर्ण महत्ता की अवस्था में सीमा या बाधा से सर्वथा स्वतन्त्र यह प्रकाश आनन्द का धाम है, यह शक्ति वह है जो मनुष्य की आत्मा को अपना मित्र बना लेती है और इसे युद्ध के बीच में से सुरक्षिततया पार कर देती है, यात्रा की समाप्ति पर इसकी अभीप्सा के अन्तिम प्राप्तव्य शिखर पर पहुँचा देती है। (मन्त्र १०) [अदिति कार्यालय के सौजन्य से]

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और भारतीय विचारधारा

डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्ता, एम. बी. बी. एस.

[पिछले अङ्क से]

चिकित्सा विज्ञान का पुनरुत्थान

इस प्रकार भारत में १००० वर्ष तक तथा उसी समय यूरोप यूनान और रोम में गेलन के बाद १५०० वर्षों तक चिकित्सा विज्ञान का विकास अवरुद्ध रहा। ईसा की सोलहवीं शताब्दी में चिकित्सा विज्ञान ने पुनः पलटा खाया। १५१४ ई० में ब्रूसेल्स नगर मे एन्ड्राज विसेलियस का अभ्युदय हुआ। विसेलियस ने सर्व प्रथम मानव शरीर का शवच्छेद आरम्भ किया और उसके अंग-प्रत्यंग का अध्ययन और वर्णन किया। सन् १५३७ ई० में वह इटली के पदुआ विश्वविद्यालय में शरीर रचना का प्रोफेसर नियुक्त हुआ।

विसेलियस के साथ-साथ शरीर रचना विज्ञान की उन्नति के सम्बन्ध में कुछ और नाम भी स्मरणीय हैं। इनमें से फेलोपियस (१५२३–१५६२), यूस्टेशियस (१५५२), वैरोलयस (१५४३–७५) डॉग्रेफ (१६४१–७३), विलिस (१६२२–७५), ग्लिसीन (१५६७–१६७२), बुनर (१६५३–१७२७) स्टेनसन (१६३८ ८६), विन्सलो (१६६६–१७६०) आदि मुख्य हैं।

इस प्रकार मानव शरीर रचना का अध्ययन हुआ। इसके पश्चात् उसके कार्य कलापों के बारे में अध्ययन आरम्भ हुआ। माइकेल सरवीटस (स्पेन देशवासी) और विलियम हार्वे (अंगरेज) ने शरीर में रक्तपरिभ्रमण का सही वर्णन किया। विलियम हार्वे ने अपनी मौलिक खोज १६२८ ई० में प्रकाशित की।

विलियम हार्वे के पश्चात् अणुवीक्षण यन्त्र का आविष्कार हुआ। इस सिलसिले में हालैन्ड देश के ईन्सजैन्सन नामक एक चश्मे के व्यापारी तथा लीवनहॉक के नाम उल्लेखनीय हैं। अणुवीक्षण यन्त्र का चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में सर्व प्रथम प्रयोग सन् १६६० ई० में मार्सिलो माल्पिघाई नामक इट लियन ने किया था। इस प्रकार अणुवीक्षण यन्त्र के निर्माण के उपरान्त शरीर की सूक्ष्म रचना के अध्ययन का आरम्भ हुआ। इसी यन्त्र की सहायता से लीवनहाक ने सर्व प्रथम कीटाणुओं तथा शुक्राणुओं के दर्शन किये. जैनस्वेमरडैम ने रक्तकणों का अनुसन्धान किया।

मानव शरीर की रचना तथा उसके कार्य-कलापों सम्बन्धी उपर्युक्त उन्नति के साथ-साथ चिकित्सा विज्ञान की मुख्य शाखाओं शाल्यकी तथा भैषज्य में भी उन्नति होने लगी। सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल में एम्ब्रोय पारे नामक फ्रांसीसी सर्जन ने शाल्यकी में बहुत उन्नति की। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सिडनहैम ने चिकित्सा सम्बन्धी ख्याति पाई। सर्व प्रथम सिडनहैम ही तत्कालीन डाक्टरों को शवच्छेद और प्रयोगशाला की भूलभुलैया से निकाल कर रोगी की शैया के पास ले गया। उसने वह मार्ग प्रशस्त किया जहां ज्ञान का असीम कोष भरा पड़ा था। उस के कथनानुसार चिकित्सा विज्ञान का सच्चा अध्ययन करने के लिये केवल एक ही स्थान उपयुक्त था, और वह थी रोगी की शैया।

इस प्रकार सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दियों में विज्ञान सम्मत चिकित्सा शास्त्र की सुदृढ नींव बनी जिस पर आगे चल कर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का विशाल भवन निर्मित हुआ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का उत्कर्ष

इसके बाद का इतिहास चिकित्सा विज्ञान की सफलताओं की वह ज्वलन्त कहानी है, जिस पर आज का सभ्य मानव गर्व करता है। अब बड़ी द्रुतगति से एक के बाद एक अनुसन्धान और खोज होती गई। उन्नीसवीं शताब्दी में चिकित्सा विज्ञान की सभी

शाखाओं की समुचित उन्नति हुई। अब शरीर रचना, शरीर क्रिया विज्ञान, रोगविज्ञान (पैथालोजी) कीटाणु शास्त्र, भैषज्य, चिकित्सा तथा औषधि निर्माण समुन्नत शास्त्र बन गये। चिकित्सा विज्ञान के विविध अङ्ग शाल्यकी चिकित्सा, प्रसूतितन्त्र स्त्रीरोग विज्ञान, कौमार्य भृत्य नेत्ररोग विज्ञान आदि अलग अलग विकसित होने लगे। विज्ञान की अन्य सभी शाखाओं रसायन शास्त्र विद्युत शास्त्र जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान आदि की समुचित सहायता ली गई।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ होते होते आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अपना विशाल रूप पा चुका था पर सच्ची उन्नति अभी शेष थी। अब एक के बाद एक कर के सीरम, वैक्सीन, विटामिन, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के हार्मोन तथा कीटाणुजनित रोगों के लिये अचूक औषधियां (कामोथैरेपी) का आविर्भाव हुआ। महान् जर्मन वैज्ञानिक अर्हलिक ने सिफलिस की अचूक औषधि का आविष्कार किया।

इसके बाद संसार ने दो बार मानव का ताडव नर्तन देखा। पर इन दो महायुद्धों में भी चिकित्सा विज्ञान की महती उन्नति हुई। आधुनिक निर्माण शाल्यकी (प्लास्टिक सर्जरी), पेनिसिलीन, पैल्यूड्रोन, डी डी टी आदि अनेक चमत्कारी आविष्कार हुए। दूसरे महायुद्ध के बाद से तो प्रति दिन नये नये अनुसन्धान और आविष्कार होते जा रहे हैं। क्षय, कोढ़ कैंसर जैसे दुष्ट रोगों पर मानव की विजय की सम्भावना अब बहुत बलवती, आशापूर्ण और निकट दिखाई पड़ रही है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान किसी एक देश, संस्कृति अथवा काल की सीमा से नहीं बांधा जा सकता। जब सारा संसार अन्धकारमय था, तब जगद्गुरु भारत के ऋषि मुनियों ने इसको जन्म दिया था। चिकित्सा विज्ञान का विद्यार्थी आज भी इसका इतिहास पढ़ते समय अपने इन अज्ञात आदि गुरुओं के सम्मान में अपना सिर झुका लेता है अपने शैशवकाल में ही यह विज्ञान भारत से यूनान, मिश्र और वहां से यूरोप के अन्य देशों में फैला और तब से अब तक सभी कालों में विविध देशों और जातियों ने इसकी उन्नति में हाथ बटाया है, किसी ने कुछ कम तो दूसरे ने अधिक। और तभी से यह विज्ञान निरन्तर भ्रमात्मक धारणाओं और सिद्धान्तों को द्रुतगति से पीछे छोड़ता हुआ, सत्य को अपनाता हुआ आज अपने युवाकाल में, सर्वश्रेष्ठ और उन्नत रूप में रक्तस्नात मानवता की सेवा के लिये प्रस्तुत है। इस उन्नति की दौड़ में कहीं कहीं समय और परिस्थितिवश इसकी शाखायें इतनी पिछड़ी रह गई हैं कि सामान्य व्यक्ति को इनमें और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में कोई सामञ्जस्य ही नहीं दिखता और वह इनको एक दूसरे से अलग मानता है। जब कि वास्तव में एक दूसरे का पूर्वरूप है और दूसरा उसका उन्नत रूप।

इस प्रकार आज का चिकित्सा शास्त्र न आयुर्वेद है न यूनानी, न होमियोपैथी और न ऐलोपैथी न वह भारतीय है न अभारतीय। वह तो जीवशास्त्र भौतिक रासायनिक, विद्युत आदि शास्त्रों तथा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का मानव की पीड़ाओं और उसकी यातनाओं का निवारण करने के लिये एक व्यावहारिक प्रयोजन है और अब तो इसके उद्देश्य तथा भावनायें बहुत वृहत्तर होते जा रहे हैं। 'सोशल मेडिसिन' का प्रादुर्भाव और 'विश्व स्वास्थ्य संस्था' का संगठन मानवता के शुभ्र भविष्य के प्रतीक हैं।

सही दृष्टिकोण

अन्य शास्त्रों की भांति इसके लिये भी कुछ मान्यतायें स्वीकार करनी पड़ेगी। विज्ञान का सिद्धान्त

वाक्य है देखो, समझो और मानो, न कि सुनो, विश्वास करो और चिपको। विज्ञान केवल कुछ सिद्धांतों, नियमों और मतों का सामूहिक नाम ही नहीं है, वह तो जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है। हमारे आदि गुरुओं ने इस सिद्धान्त को हृदयंगम किया था और वे हमें वह चीज़ दे गये जिस के लिए सारा संसार ऋणी है। पर आज हम उस सिद्धांत को भूल कर लकीर के फ़कीर बन रहे हैं। यदि आज चरक और सुश्रुत भारतवर्ष में अपने काम और नाम की यह छछालेदर देखने को जीवित होते तो निश्चय ही उनकी आत्मा को महान् दुःख होता।

आज तो चरक, सुश्रुत और हिप्पोक्रेट्ज़ आदि की उसी भांति पूजा होनी चाहिये, जैसे कि देवी देवताओं की होती है। उन का नाम और काम श्रद्धा, भक्ति, पूजा और इतिहास का विषय होना चाहिए, न कि पाठ्यपुस्तकों का। स्टीवेन्सन का नाम आज भी स्टीम इञ्जन का प्रसङ्ग आने पर सर्वाधिक श्रद्धा और सम्मान के साथ सब से पहले लिया जाता है, पर यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि हम तो उसी के बनाये हुये इञ्जन को पटरी पर दौड़ायेंगे तो यह केवल हास्यास्पद ही नहीं होगा, अपितु स्टीवेन्सन की महत्ता का अपमान होगा। इसी प्रकार आज के वैद्यों का स्वार्थपूर्ण तूर्यनाद हमारे इन महान् आचार्यों की महत्ता को कम कर रहा है।

वैद्यों की डाक्टरों के प्रति आज वही प्रतिक्रिया हो रही है, जैसे कि मानों किसी नासमझ बाप की अपने उस बेटे के प्रति हो जो शैशव में ही उस से अलग हो जाये, और कई वर्षों के बाद पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बन कर उसके सामने आये, तो वह बेचारा बाप हतप्रभ हो उठे, और विश्वास भी न कर सके कि यही मेरा बेटा है।

दूसरी ओर डाक्टरों की भी वैद्यों के प्रति वह भावना और प्रतिक्रिया नहीं है जो होनी चाहिये थी। वैद्य और हकीम चिकित्सा विज्ञान के पूर्ववर्ती रूप के प्रतिनिधि होने के नाते हमारे पूज्य और श्रद्धा के पात्र हैं। पिछड़े हुए सही पर हैं तो आज के डाक्टर के पिता। किन्तु खेद की बात है कि अधिकांश डाक्टर इस पुनीत रिश्ते को भूल कर वैद्यों को हेय दृष्टि से देखते हैं। जब डाक्टर और वैद्यों में परस्पर बेटे और बाप की भावना का उदय हो सकेगा तभी वे एक दूसरे को समझ सकेंगे और तभी देश की जनता को सही निर्देशन मिलेगा।

न्यस्त स्वार्थ और परम्परागत संस्कारों तथा मिथ्या मान्यताओं के कारण कुछ लोग इस प्रयत्न में बाधा डालेंगे। इसलिए समझने बूझने वालों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे सत्य को प्रकाश में लाने के लिये सतत उद्योग करें।

कुछ सुझाव

इस दिशा में हमारी सरकार का सर्वाधिक उत्तरदायित्व है। आज तो कुछ प्रदेशों की सरकारें इस द्वन्द्व से इतनी भयभीत सी हो गई हैं कि वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही हैं।

इस सिलसिले में कुछ सुझाव यहां दिये जा रहे हैं—

सरकार को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, आयुर्वेद और यूनानी के एकात्म्य का सिद्धान्त मान कर अपनी समानान्तर नीति छोड़नी होगी।

कहीं मेडिकल कालेज, कहीं आयुर्वेद विद्यालय तो कहीं तिब्बिया और होमियोपैथी स्कूल, यह हास्यास्पद स्थिति जल्दी से जल्दी बन्द करनी चाहिये। चिकित्सा विज्ञान के सभी विद्यार्थियों को कम से कम ग्रेजुएट क्लास तक एक ही शिक्षा देनी चाहिये। इसका कैरि-

क्युलम अपने नये दृष्टिकोण के अनुसार पुनः संगठित और निर्धारित किया जा सकता है।

आयुर्वेद, यूनानी आदि की विस्तृत शिक्षा पोस्ट ग्रेजुएट विद्यार्थियों के लिये होनी चाहिये। इन विषयों पर शोध की विशेष आवश्यकता है। सर्वाधिक आवश्यकता है चिकित्सा विज्ञान के प्रामाणिक इतिहास की। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखे गये इतिहास में भारत की उपेक्षा की गई है। हमें भारतीय दृष्टिकोण से नया इतिहास बनाना होगा। आयुर्वेद सम्बन्धी प्राचीन साहित्य की खोज और उस की शोध करनी होगी। तब अनेकानेक विषयों की खोज की जा सकेगी और हम संसार के सामने अपने को गौरवान्वित करके आयेंगे. और तब अनायास ही हमारे भूत के लिए समस्त विश्व धन्य धन्य पुकार उठेगा।

हां, हमारा भारतीयकरण किया जा सकता है और किया जाना भी चाहिये। शिक्षा हिन्दी में दी जा सकती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को आयुर्वेद कहा जा सकता है, क्योंकि आयुर्वेद से श्रेष्ठतर अन्य कोई नाम चिकित्सा विज्ञान के लिये कहीं उपलब्ध नहीं हो सकता। आयुर्वेद शब्द में निहित भावना शाश्वत है, सनातन है। हमें डाक्टर के स्थान पर वैद्य कहा जा सकता है 'एम. बी. बी. एस.' और एम. डी' के स्थान पर 'आयुर्वेद विशारद' तथा 'आयुर्वेदाचार्य' उपाधियां दी जा सकती हैं। पर शिक्षा वही दी जानी चाहिये जो विज्ञानसम्मत हो। जिस में देखो, समझो और मानो का दृष्टिकोण हो। जो सुनो, विश्वास करो और चिपको न हो।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित उद्योगों औषधि निर्माण आदि का राष्ट्र में प्रसार और उनका राष्ट्रीयकरण कर के असंख्य धनराशि विदेशों में जाने से बचाई जा सकती है। डाक्टरों का राष्ट्रयकरण भी किया जा सकता है। इस प्रकार हम जल्दी ही अपना वर्तमान उज्वल बना सकेंगे और जिस का आज अच्छा होता है, उसका भूत और भविष्य स्वतः उज्वल हो जाता है।

यदि हमें अपने पूर्वाचार्यों की कल्पना साकार करनी है, उनके नाम और काम की लाज रखनी है तो सही मार्ग प्रशस्त करना ही होगा।

विज्ञापकों से

गुरुकुल पत्रिका भारत के प्रत्येक प्रान्त में और अफ्रीका, फिजी आदि देशों में भी चाव से पढ़ी जाती है। विज्ञापन की दर निम्न लिखित है—

टाइटल का तीसरा पृष्ठ	३०) मासिक	टाइटल का चौथा पृष्ठ	३५) मासिक
साधारण पृष्ठ	२५) ,,	आधा पृष्ठ	१५) ,,
चौथाई पृष्ठ	८) ,,		

शिक्षित परिवारों की पत्रिका होने से यह आपके माल को ग्राहक तक पहुँचाने के लिये बड़ा अच्छा साधन है। आप भी अपना विज्ञापन शीघ्र भेजिये।

अध्यक्ष, विज्ञापन विभाग, गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी।

अभिनन्दन पत्र

उत्तर-प्रदेश के शिक्षामन्त्री माननीय ठाकुर श्री हरगोविन्द सिंह जी की सेवा में—

माननीय अभ्यागत महोदय,

भारतीय आदर्शों के समान उच्च इन हिमाचल के आंचल में, वैदिक-संस्कृति के समान पवित्र इस भगवती भागीरथी के अङ्क में, भविष्यदर्शी महर्षि श्रद्धानन्द की इस तपोभूमि में आप पधारे हैं, हम हृदय से आपका स्वागत करते हैं।

उत्तर प्रदेश में सरस्वती की जो आराधना हो रही है, आज उसके प्रधान पुजारी आप ही हैं, प्रसन्नता का विषय है कि इस पवित्र उत्तरदायित्व को सम्हालते ही आपकी सूक्ष्म दृष्टि उन अंधेरे कोनों पर पड़े बिना न रह सकी जिन की शुद्धि का दृढ़ निश्चय कर के आपने अपने सत्साहस का परिचय दिया है।

हमारी आजकल की शिक्षा केवल बौद्धिक है. उस का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं, उसकी पृष्ठभूमि में भारतीय संस्कृति तथा भारतीय साहित्य को कोई स्थान नहीं, यही कारण है कि वह हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकती। यह गुरुकुल इसी असन्तोष की प्रतिक्रिया है। इसके संस्थापक ने एक दिन ३० हज़ार रुपया तथा बीस बालक लेकर, वृक्षों की छाया के नीचे ज्ञानयज्ञ की इस अग्नि को प्रज्वलित किया था, इस की आधारशिला इसके संस्थापक का वह आत्मविश्वास है कि जिसने ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि लार्ड चेम्सफोर्ड के एक लाख रुपया वार्षिक सहायता के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था; इसका मूलधन जनता का वह प्रेम है जिस से प्रेरित होकर वह करोड़ों रुपया इस पर निछावर कर चुकी है। यह गुरुकुल देश का सर्व प्रधान राष्ट्रिय शिक्षणालय है जिसके द्वार सब धर्म तथा जाति के बच्चों के लिये समान रूप से खुले हुए हैं। तथाकथित अछूत और सवर्ण बालक यहां एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करते हैं।

यहां प्रत्येक अन्तेवासी को आश्रम में रहना आवश्यक है जिस से कि वह चौबीस घण्टे गुरुओं के निकट सम्पर्क का लाभ उठा सके और वे भी उसकी विविध प्रवृत्तियों को उचित दिशा में ढाल सकें, यद्यपि अब हमने दैनिक छात्रों को भी अध्ययन की सुविधा देने की व्यवस्था करली है। गुरुकुल की दूसरी बड़ी विशेषता है मातृभाषा के माध्यम द्वारा उच्च शिक्षा देना जिसे अब अन्य विश्वविद्यालय धीरे धीरे अपनाते जा रहे हैं। हमारे पाठ्यक्रम में संस्कृत आदि भारतीय विषयों को भी उचित स्थान प्राप्त है।

गुरुकुल का उद्देश्य ऐसे नवयुवक उत्पन्न करना है जिनका जीवन सरल तथा विचार उच्च हों, जिनकी वृत्तियां परिष्कृत और भावनाएं पवित्र हों, जो कठोर कर्त्तव्य परायण और नैतिक जीवन वाले हों जो राष्ट्र के हित के सामने अपने वैयक्तिक स्वार्थ को तिलाजलि दे सकें। हमारा लक्ष्य जितना महान् है हमारे साधन उतने पर्याप्त नहीं, तो भी हम निरुत्साहित नहीं, क्योंकि हमें विश्वास है कि इसकी चिन्ता भगवान् को स्वयं है।

हमारी राष्ट्रीय सरकार ने सत्तारूढ़ होते ही, गुरुकुल के स्नातकों के लिये अपनी सेवाओं का पथ प्रशस्त कर तथा समय समय पर कुछ आर्थिक सहायता देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है हम इसके लिये उसका धन्यवाद करते हैं, किन्तु हम और आगे बढ़ना चाहते हैं। हमें अभी यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सका कि गुरुकुल को राज्य द्वारा स्वीकृत स्वतन्त्र विश्वविद्यालय के रूप में विकसित कर सकें। उन्नति के लिये यह परमावश्यक है, क्योंकि किसी दूसरे विश्वविद्यालय का अङ्ग बन कर तो हमें अपनी अनेक विशेषताओं से हाथ धो लेना पड़ेगा।

माननीय शिक्षामन्त्री श्री हरगोविन्द सिंह जी का भाषण

श्री कुलपति जी, आचार्य जी, स्नातकों, तथा ब्रह्मचारियों,

अपनी उगती तरुणाई के दिनों से जिस संस्था के दर्शन के लिए मेरे मन में उत्कट इच्छा बसी हुई थी वह आज पूर्ण हो रही है, यह मेरे मन बड़े आनन्द की बात है। असहयोग आंदोलन के समय मैं १० वीं कक्षा में पढ़ता था। वह एक ईसाई मिशन का स्कूल था। मुझे वहाँ १६) मासिक की एक शिष्यवृत्ति भी मिलती थी। मैंने उन दिनों असहयोग के सिद्धात के अनुसार पढ़ना छोड़ दिया था। उस विद्यालय के हार्वे नामक एक पादरी बड़े सज्जन, परोपकारी और सदाचारी व्यक्ति थे। उन्होंने मुझे बहुत समझाया कि जाओ, ईविंग क्रिश्चियन कालेज प्रयाग में प्रविष्ट हो जाओ। तुम्हारी छात्रवृत्ति भी १६) से ३२) कर दी जायगी। परन्तु राष्ट्रीय संग्राम के उन दिनों में इस प्रकार के शिक्षालयों के प्रति मेरे मन में विशेष अरुचि थी। मेरे बड़े भाई ने पुन: शिक्षा प्रारम्भ करने का आग्रह किया। परन्तु मेरे मन में तो देश की लड़ाई में जाने की उमंग थी। मैंने अपने भाई साहब से कहा, यदि मैं अब किसी पाठशाला में जाऊँगा तो ऐसे स्थान में जाऊँगा जो राष्ट्रिय शिक्षालय हो मेरी पसन्दगी में जो पहला स्थान था, वह था गुरुकुल काँगड़ी का। दूसरा स्थान था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का। आप सोच सकते हैं कि उस समय से ही मैं गुरुकुल की शिक्षा के प्रति कितना प्रभावित था। बाद को बड़े भाई के सुझाव पर मैंने काशी विश्वविद्यालय की तालीम पाई।

देश की विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए गुरुकुल की स्थापना हुई थी। उस समय देश के लिए जिस प्रकार के नवयुवकों की आवश्यकता थी उस प्रकार के युवक सरकारी शिक्षालयों से नहीं निकलते थे।

मित्रो, मैं वस्तुस्थिति को छिपाना नहीं चाहता। आजकल जगह जगह घूम कर शिक्षणालयों का अवलोकन कर रहा हूँ। मैं आप से क्या कहूँ? जो कुछ मैं उन शिक्षागृहों में देखता हूँ, उससे मेरी गर्दन शर्म से झुक जाती है। केवल विश्वविद्यालय की तख्ती लगाने से कोई संस्था विश्वविद्यालय नहीं बन जाती। आज हमारे शिक्षाक्षेत्रों में अनेक प्रकार के विकार और भ्रष्टाचार फैले हुए हैं। अब हमारा शासन प्रजातन्त्र शासन कहलाता है। उसके लिए प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने देश के शासन-प्रकार को ठीक प्रकार समझे। यदि उसको त्रुटियाँ दिखाई देती हो तो उन-

---

माननीय शिक्षामन्त्री महोदय,

अन्त में हम आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि स्वाधीनता के संग्राम में हमारे कार्यकर्ताओं तथा छात्रों ने जो बलिदान किया है वह किसी से छिपा नहीं। आपके जीवन का सर्वोत्तम भाग भी इसी संग्राम में लड़ते हुए व्यतीत हुआ है अतः आपको इस से प्रेम होना स्वाभाविक ही है। आज आप अपनी इस प्रिय संस्था में पधारे हैं, हम आप का पुनः स्वागत तथा अभिनन्दन करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप के आतिथ्य में जो भूल चूक हम से हो गई हो उस के लिये हमें क्षमा करें।

हम हैं आपके—
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के
उपाध्याय तथा अन्तेवासी

गुरुकुल भूमि
तिथि २६-११-१६५२

★

साहित्य-परिचय

[प्रत्येक पुस्तक का दो प्रतियां आना आवश्यक एक पुस्तक प्राप्त होने पर केवल प्राप्ति स्वीकार दिया जा सकेगा। —सम्पादक]।

वैदिक बालशिक्षा (द्वितीय भाग)— लेखक, आचार्य विद्यानन्द विदेह। प्रकाशक, वेद संस्थान अजमेर। २०×३०/१६ आकार, पृष्ठ संख्या ६०, मूल्य ।-)।

दान धैर्य, अक्रोध भद्र श्रवण, पराक्रम शीलता युक्त भाषण संयम आदि जिन गुणों को हम अपने बच्चों में डालने का प्रयत्न करते हैं उन की शिक्षाए वेद मन्त्रों के आधार पर आचार्य विदेह ने इस पुस्तक में दी हैं। लेखक की भाषा तथा शैली इतनी सुन्दर और सरल है कि बालकों के लिए वेदमन्त्र भी चाव से पढ़ने योग्य वस्तु बन गये हैं। भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम, शिरोमे श्री यशोमुखम्, उग्रा व सन्तु बाहव, अश्मान तन्व कृध, — ये हैं उन वैदिक शिक्षाओं के नमूने जिन्हें श्री विदेह बालकों को सिखाना चाहते हैं। हम श्री विदेह के इस प्रकार के क्रिया कलापों का स्वागत करते हैं और चाहते हैं कि उनकी यह पुस्तक बालकों का धर्मशिक्षा की पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाई जाय।

यज्ञोपवीत रहस्य लेखक तथा प्रकाशक वही। पृष्ठ संख्या १६ मूल्य –)। इसमें यज्ञोपवीत का महत्व तथा रहस्य समझाया गया है।

प्रार्थना मञ्जरी— लेखक श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती। प्रकाशक आनन्द कुटीर, ऋषिकेश। प्रथम

का कारण समझें और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। मैं जहां कहीं स्थिति को ठीक नहीं पाता हूँ तो लोगों से उसका जिक्र करता हूं। आप जानते ही हैं इसी कारण आजकल मैं टीकाओं और निन्दाओं का पात्र बना हुआ हूं। पर जैसा कि मैंने कहा राष्ट्र की वस्तु स्थिति से आंख मिचौनी करना तो ठीक नहीं है। हमें साहस के साथ अपनी संस्थाओं की त्रुटियों को खोजना समझना होगा और उनके सुधार का उपयोग करना होगा। तभी राष्ट्र के चरित्र की शुद्धि होगी। यह काम शिक्षणालयों का है।

हमारे प्रांत के लिए यह गौरव की बात है कि इस प्रकार की यह एक संस्था यहाँ विद्यमान है। जो उन आदर्शों की पूर्ति के लिए स्थापित हुई है जिसकी आज देश को जरूरत है। प्रजा के चरित्र निर्माण के लिए स्वामी जी महाराज ने इसकी स्थापना की थी। ध्यान रखिए वर्तमान की दौड़ में पड़ कर आप अपने आदर्शों को खो न दें।

कई विश्वविद्यालयों को देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मुझे शर्म आने लगी, कि लोग कितना गैर जिम्मेदारी से काम करते हैं। बच्चों में जो चीजें पैदा हो रही हैं उसे देख कर लज्जा आती है। आज अवस्था क्या है? शिष्य फीस देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। गुरु भी व्याख्यान देकर चला जाता है। गुरु शिष्य के पारस्परिक परिचय, और आदान प्रदान से चरित्र का निर्माण होता है। गुरु के ज्ञान और चरित्र के प्रभाव और प्रेरणा से ही शिष्य के मन में प्रकाश और पवित्रता प्रबुद्ध होती है। गुरु शिष्य का उन्नत सम्बन्ध ही हमारा शिक्षा विधि का मूल है। याद रखिए, मैं संख्या वृद्धि का कायल नहीं हूं। मैं तो गुण वृद्धि का पक्षपाती हूं। इस लिए मेरा विश्वास है कि देश के शिक्षातन्त्र का उत्कर्ष गुरुकुल के आदर्शों से ही हो सकता है। आप लोगों से हमें बहुत आशाएँ हैं। आपने मेरा जो भारी सम्मान किया है उस के लिए मैं गुरुकुल विश्वविद्यालय का आभारी हूँ।

★

सस्करण, १६५२। आकार २०×३०/१२, पृष्ठ संख्या १६६, मूल्य २)।

उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध साधक श्री स्वामी शिवानन्द ने भक्तों और साधकों के लिए अंग्रेजी में एक पुस्तक 'पाकेट प्रेयर बुक' लिखी थी। उसी का यह परिवर्द्धित हिन्दी रूपांतर है।

स्वास्थ्य शिक्षा—लेखक श्री दयाशंकर पाठक। प्रकाशक, जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स, चौड़ा रास्ता, गली गोरधन नाथ जी, जयपुर नगर। आकार २०×१०/१६, पृष्ठ संख्या ३५८, मूल्य ४)।

'प्रकृति स्वयं हमारे स्वास्थ्य की रक्षा करती है' इस सुन्दर सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए लेखक ने प्रातःकाल उठने, मल मूत्र विसर्जन करने, मुख शुद्धि करने और प्राणायाम, व्यायाम, मालिश आदि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए इन को ठीक विधि से सम्पादन करने की ओर ध्यान दिलाया है। शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग को स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल बनाने के लिए अलग-अलग व्यायामों तथा मालिशों का प्रतिपादन किया है। हमारा भोजन कैसा होना चाहिए, रोगों और कीटाणुओं से कैसे बचना चाहिए यह भी संक्षेप में बताया गया है। योगासनों के अभ्यास के तरीके चित्रों सहित समझाये हैं। लेखक ने प्रयत्न किया है कि स्वास्थ्य को ऊंचा बनाना चाहने वालों के लिए अधिक से अधिक जानकारी इस पुस्तक में आ जाय। विषय को स्पष्ट करने के लिए चित्रों का प्रयोग खूब किया गया है। सर्व साधारण के लिए यह काम की पुस्तक बन गई है। लेखक महोदय ने हमें सूचना दी है कि ३५८ पृष्ठों की यह पुस्तक गु० प० के पाठकों को वे ४) के स्थान पर २||) में ही देंगे। प्रसिद्ध व्यायाम शास्त्री प्रो० राममूर्ति ने पुस्तक की भूमिका लिखी है। स्वास्थ्य की शिक्षाओं से भरपूर इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार होना चाहिए। —रामेश बेदी।

विश्व ज्योति—साधु आश्रम, होशियारपुर। वार्षिक मूल्य ८) : सम्पादक—श्री विश्वबन्धु तथा श्री सन्तराम बी० ए०।

श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक-संस्थान की ओर से प्रकाशित इस नवीन मासिक पत्रिका का हम सप्रेम स्वागत करते हैं। पत्रिका के प्रथम अङ्क से ही इसकी अच्छी भवितव्यता का आभास मिल रहा है। दोनों ही सम्पादक अपने अपने क्षेत्र के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् और सुलेखक हैं। पत्रिका में उन के कर्तृत्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। लेख सामग्री उच्च कोटि की और ज्ञानप्रद है। सुरुचि और सात्विकता से इस का सम्पादन किया गया है। 'एकलिपि विस्तार' विभाग का हम विशेष रूप से स्वागत करते हैं। पत्रिका का अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों प्रशंसनीय है।

—शंकरदेव।

★

गुरुकुल-समाचार

ऋतु रंग

शीतकाल अपने वैभव पर है। प्रातः सायं अच्छी करारी ठंड पड़ रही है। पूर्व दिशा की काटने वाली हवाएँ भी समय समय पर बहने लगती हैं। सायं पांच बजते बजते ही प्रकाश संकीर्ण हो जाता है और शीत पड़ने लग जाता है। धूप सुहावनी लगने लगी है। विद्यालय में अध्ययन की श्रेणियाँ मुक्ताकाश की सुहावनी धूप में लग रही हैं। वन उपवन का तरु-लताएँ भी आजकल ठिठकी और सहमी हुई सी रहती हैं। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य प्रशसनीय है।

आजकल सायंकाल में छात्रों की विविध क्रीड़ाओं की बड़ी रौनक रहती है। अध्ययन-काल से छुट्टी होते ही कुल के क्रीड़ाक्षेत्र ब्रह्मचारियों के क्रीड़ा-कल्लोल से गूँज उठते हैं।

वन-यात्राएँ

दीपावली के बाद से छात्रों के साप्ताहिक वन-परिभ्रमण प्रारम्भ हो गए हैं। सभी विभागों के छात्र छुट्टी का दिन आते ही शिवालिक की उपत्यकाओं में, तथा पुरानी भूमि के समीपस्थ वनों में सिद्धाश्रम, धर्मकुण्ड, गौरी वन, चिल्ला लाल ढांग आदि स्थानों की यात्रा पर निकल जाते हैं। आजकल वनों में आँवलों और वन्य बेरों की बड़ी बहार है। इन साहसिक परिभ्रमणों में वनौषधियों और वन्य पशुओं की टोह में भी अनेक मंडलियाँ निकल जाती हैं। अभी पिछले दिनों एक मण्डली 'रसलूस वाईपर' नाम का भयंकर विषैला साँप पकड़ लाई है—जो प्रकृति-विज्ञान संग्रहालय में सुरक्षित कर लिया गया है। एक बड़े शेर की खोपड़ी भी छात्र खोज लाए हैं।

उत्तर प्रदेश के शिक्षा मन्त्री

२६ नवम्बर को प्रातः सूबे के शिक्षा मन्त्री श्री हरगोविन्द सिंह जी अपने सहकर्मियों सहित गुरुकुल शिक्षा नगर में पधारे। प्रधान प्रवेश द्वार पर कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, आचार्य श्री प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति तथा गुरुकुल के उपाध्यायों व अन्तेवासियों ने उनका भावभीना स्वागत किया। गुरुकुल के गुरुजनों के साथ वार्तालाप करते हुए वे पैदल ही विश्रान्त-गृह तक आए। अपराह्न का भोजन भी उन्होंने गुरुकुल में ही ग्रहण किया। विश्राम के उपरान्त मन्त्री महोदय ने गुरुकुल शिक्षा-नगर की परिक्रमा करते हुए दोनों छात्रावास महाविद्यालय, ग्रन्थालय, रसायन-शाला, विद्यालय पुरातत्त्व संग्रहालय आयुर्वेद महा-विद्यालय श्रद्धानन्द सेवाश्रम, प्रकृति-विज्ञान संग्रहा-लय, चिकित्सालय और विविध विभागों का बड़ी दिल-चस्पी के साथ अवलोकन किया। गुरुकुल की वनस्पति वाटिका को आपने विशेष अभिरुचि के साथ पर्याप्त समय तक देखा और कई वनौषधियों का परि-चय प्राप्त किया।

साँझ को वेद मन्दिर में आपके सम्मान में समस्त कुलवासियों की एक स्वागत सभा समवेत हुई। सब गुरुजन और अन्तेवासी अपने नियत वेष में सुसज्जित थे। आदि में राष्ट्रगान और संस्कृत कविता में मङ्गलाचरण किया। तत्पश्चात् कुलपति श्री प० इन्द्र जी विद्या-वाचस्पति ने गुरुकुल विश्वविद्यालय की भावना, हेतु और कार्यशैली का परिचय देते हुए माननीय अभ्यागत महो-दय का अभिनन्दन किया।

कुलपति जी ने संक्षेप में यह बताया कि जिस समय राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप का भी किसी को भान नहीं था उस समय अपूर्व आत्मविश्वास के धनी पुण्य-स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने तीस छात्रों के साथ इस अभि-नव शिक्षायज्ञ का प्रारम्भ किया था। पर्णशालाओं से बनी हुई एक पाठशाला से विकसित होते होते यह आज विश्वविद्यालय के रूप में आपके सामने खड़ा है। इसकी प्रधान विशेषता यह है कि यह भारत भूमि की अपनी प्राकृतिक उपज है। स्वदेशीय उपादानों और

आदर्शों के आधार पर इस का निर्माण और परिचालन हुआ है। विदेशी नदैने के द्वारा किसी का अनुकरण कर के इस शिक्षणालय का प्रणयन नहीं हुआ है। अपने स्वयंभू विकास से बना हुआ यह शिक्षा-निकेतन है। आर्यावर्त की पुरातन शिक्षा-संस्कृति इस के बीज में थी। इसके वातावरण में वैज्ञानिक पवन भी स्वतन्त्र रूप से बहता रहा। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रभाव का इसने स्नेह से स्वागत किया। इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन तत्वों का सुभग समन्वय यहाँ प्राकृतिक ढंग से हो सका है। यह तपोभूमि भी है, यहाँ विज्ञान की प्रयोगशाला भी है, अनुसन्धान-शालाएँ भी हैं, पुस्तकालय और रोगनिदान-भवन भी है, प्रार्थना-भवन और होमशालाएँ भी हैं। संक्षेप में यह विद्यातीर्थ और साधना-भूमि दोनों है। भारत का अपने ढङ्ग का यह पहला राष्ट्रिय शिक्षा-मन्दिर है। इस शिक्षा-तपोवन में वन्य पत्रपुष्पों से हम आपका स्वागत और अभिनन्दन करते हैं।

कुलपति जी के प्रारम्भिक प्रवचन के पश्चात् गुरुकुलाचार्य श्री प० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति ने कुलवासियों की ओर से अभिनन्दन पत्र मान्य मन्त्री महोदय की सेवा में प्रस्तुत किया।

सम्मान पत्र के उत्तर में मान्य मन्त्री महोदय ने जो भाषण दिया वह अन्यत्र दिया गया है।

वन्देमातरम् के सामूहिक गान के पश्चात् सवर्धना सभा विसर्जित हुई। सायकाल का जलपान भी मान्य मन्त्री महोदय ने गुरुकुल के गुरुजनों के साथ ही किया।

मान्य अतिथि

अक्टूबर मास में हमारे सूबे के स्वशासन मन्त्री श्रीयुत् मोहनलाल जी गौतम गुरुकुल विश्वविद्यालय में पधारे। आप ने विभिन्न विभागों का अवलोकन कर प्रसन्नता प्रकट की।

हाल में ही उत्तर प्रदेश के वन-विभाग के उपमन्त्री श्रीमान् जगमोहन सिंह जी नेगी तथा उन के साथ प्रान्त के मुख्य वन संरक्षक श्रीयुत आर० एन० सिंह ने गुरुकुल की परिक्रमा कर के यहाँ के कार्य-कलापों और संग्रहालय तथा आयुर्वेद फार्मेसी आदि विभागों को विशेष दिलचस्पी से देखा।

मसूरी के प्रसिद्ध अमेरिकन विद्यालय (वुडस्टक स्कूल) के छात्र छात्राएँ और गुरुजन कई घंटे तक गुरुकुल रहे और गुरुकुल की कार्यशैली और आदर्शों का परिचय पाते रहे। छात्र मंडली ने ग्रन्थालय और संग्रहालय का अधिक अभिरुचि से देखा। इसी प्रकार अन्धेरी (मुम्बई) में स्थित वहाँ के सुविदित पबलिक-स्कूल हसराज मोरार जी विद्यालय की यात्रा-मंडली ने गुरुकुल का अवलोकन किया।

विशेष व्याख्यान

गुरुकुल के समीप ही बहादराबाद में भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई हो रही है। वहाँ से प्रागैतिहासिक काल की कुछ महत्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। जिन में ताम्र निर्मित कुछ आयुध मुख्य हैं। ११ नवम्बर को उक्त खुदाई के अधिकारी डाक्टर यज्ञदत्त शर्मा एम० ए०, डी० फिल० गुरुकुल पधारे और आपने खुदाई के आधार पर विश्व की प्राक्-इतिहास कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला। आपने बहादराबाद में प्राप्त ताम्र-आयुधों को दिखा कर अपने विषय को परिस्फुट किया। ये डा० यज्ञदत्त शर्मा गुरुकुल के पुराने उपाध्याय श्री पं० कन्हैयालाल जी शास्त्री के सुयोग्य सुपुत्र हैं। गुरुकुल का पुराना पुण्य भूमि ही इन का जन्मस्थान है। यह पुराना परिचय पाकर कुल-वासियों ने विशेष उल्लास और आनन्द अनुभव किया। श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने समस्त कुल-वासियों की ओर से डाक्टर महोदय का विशेष स्वागत

करते हुए उन की उपलब्धियों के लिए सप्रेम अभिनन्दन किया। संग्रहालय द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला में डा० साइन का अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्द्धक सिद्ध हुआ है।

पुस्तकालय

विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में अनुदिन नए नए उत्तमोत्तम ग्रन्थों की वृद्धि होती जा रही है। कई विद्याविलासी संस्थाओं और गुरुकुल प्रेमी साहित्य-सेवी सज्जनों ने अपने ग्रन्थ पुस्तकालय में भेंट रूप में भी प्रदान किए हैं जिन में काशी के श्री बाबू रामचन्द्र वर्मा, अकोला के श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री, श्री युधिष्ठिर मीमांसक, बनारस, श्री माधोप्रसाद, मोरगञ्ज, सहारनपुर, श्री हरदयालसिंह फारेस्ट आफिसर–देहरादून, श्री हरिदत्त वेदालंकार, गुजरात राष्ट्रीय विद्यापीठ अहमदाबाद, ट्रावनकोर विश्वविद्यालय और गौतम बुकडिपो मेरठ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गुरुकुल विश्वविद्यालय उनका सप्रेम धन्यवाद करता है।

पुरातत्व-संग्रहालय

उत्तरप्रदेश के स्वशासन मन्त्री श्री मोहनलाल गौतम ने पुरातत्व संग्रहालय का निरीक्षण कर के निम्नलिखित अभिप्राय प्रकट किया—'हरिद्वार जैसे ऐतिहासिक तीर्थ स्थान में जहां प्रतिदिन यात्रियों का आना जाना रहता है, ऐसा संग्रहालय विशेष आकर्षण का केन्द्र है। तीन वर्ष के अल्पकाल में ही संग्रहालय ने जो उन्नति की है, उसे देख कर कार्यकर्त्ताओं की लगन और उत्साह का पता चलता है। यहाँ मूल्यवान् मूर्तियाँ, मुद्राओं और चित्रों का इकट्ठा किया गया है'

हमारे प्रान्त के वन विभाग के उपमन्त्री श्री जगमोहन सिंह नेगी ने संग्रहालय की मुलाकात ले कर पर्वतीय प्रदेश के लोकजीवन और इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं को विशेष रुचि से देखा। आप ने पहाड़ी-शैली (कांगड़ा कलम) की चित्रावली तथा पुरानी हस्तलिखित पोथियों को बहुत पसन्द किया। उन्हीं के साथ मुख्य वन संरक्षक श्री आर० एन० सिंह ने संग्रहालय को निहार कर उस में वन्य वस्तु विभाग को बढ़ाने का सुझाव प्रदान किया। श्री नेगी ने संग्रहालय का निरीक्षण कर निम्न सम्मति प्रकट की '१८ नवम्बर १९५२ को गुरुकुल विश्वविद्यालय में आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी इच्छा थी कि इस के विभिन्न विभागों को देखने के लिए मेरे पास अधिक समय होता। इस संस्था को दिखाने के लिए मैं श्री दीनदयालु जी शास्त्री एम० एल० ए०, मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी तथा गुरुकुल संग्रहालय के मन्त्री श्री हरिदत्त का अनुगृहीत हूं। गुरुकुल फार्मेसी, आयुर्वैदिक कालेज और संग्रहालय ने मुझे सब से अधिक प्रभावित किया। फार्मेसी केवल प्रभावोत्पादक ही नहीं किन्तु बहुत उपयोगी कार्य भी कर रही है।

मैंने अपना अधिकांश समय गुरुकुल संग्रहालय में बिताया। यह बहुत ज्ञानवर्धक और रोचक है। उत्तराखण्ड भारतीय संस्कृति के विकास में बहुत महत्वपूर्ण रहा है, इस प्रदेश की वस्तुओं का संग्रह देख कर मुझे विशेष प्रसन्नता हुई। संग्रहालय की उल्लेखनीय वस्तुयें समुद्र मन्थन चतुर्मुख शिव, कुबेर आदि की भव्य मूर्तियां और इस क्षेत्र में विकसित होने वाले कला कौशल के सुन्दर उदाहरण थे। संग्रहालय में जौनसार बावर, टिहरी गढ़वाल तथा अन्य पर्वतीय प्रदेशों के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालने वाली उत्तम सामग्री थी। ताड़पत्र पर लिखी पोथियों तथा प्राचीन भारतीय लिपि की गुत्थियां को सुलझाने वाले तथा उनके पढ़े जाने में सहायक सिद्ध होने वाले हिन्द यूनानी सिक्कों ने भी मेरा ध्यान आकृष्ट किया। इस में कोई सन्देह नहीं कि संग्रहालय दर्शकों को भारतीय इतिहास, संस्कृति, नागरिक कर्तव्यों को और अधिकारों तथा हिमाचल

प्रदेश की वनस्पति, पशु सम्पदा, लोक कला, उद्योग व्यवसाय और भूतत्व के सम्बन्ध में बहुमूल्य ज्ञान देता है। मैं इस संस्था का शुभ चाहता हूँ।'

अक्टूबर के मास में १६५१ व्यक्तियों ने संग्रहालय देख कर लाभ उठाया। मुम्बई राज्य के कई शिक्षणालयों के छात्रों ने अपनी ज्ञानयात्रा में संग्रहालय से लाभ उठाया।

प्रकृति विज्ञान संग्रहालय

मसूरी के वुडस्टाक स्कूल के समाज शास्त्र के २६ विद्यार्थी अपने अभिभावक डाक्टर आर० एल० फ्लेमिंग के साथ अपनी वार्षिक सरस्वती यात्रा के सिलसिले में गुरुकुल आए। उन्होंने इस संग्रहालय को बड़ी अभिरुचि और उत्सुकता से देखा। सम्मति पुस्तक में उन्होंने ये विचार प्रकट किए हैं—'यह संग्रहालय उत्तरोत्तर विकसित और सुन्दर होता जा रहा है।'

इसके सिवाय बम्बई के हसराज मोरार जी पब्लिक स्कूल के छात्रों ने तथा महिला विद्यालय कनखल की छात्राओं ने संग्रहालय का अवलोकन किया।

इस मास के मान्य प्रेक्षकों में प्रांत के स्वायत्त शासन मन्त्री श्री मोहनलाल गौतम और प्रधान वन-संरक्षक श्री आर० एन० सिंह ने संग्रहालय को देख कर विशेष प्रसन्नता प्रकट की। श्रीयुत आर० एन० सिंह महोदय ने वन्य पशुओं के अस्थिपञ्जर तथा अन्य वन्य वस्तुएँ एकत्र करने का परामर्श प्रदान किया।

क्रीड़ा-सान्मुख्य

इन दिनों गुरुकुल में क्रिकेट और बैडमिंगटन की बड़ी रौनक है। पिछले दिनों देहरादून का गुरु नानक क्रिकेट क्लब के साथ महाविद्यालय के छात्रों का क्रिकेट का मैच हुआ था। जिस में गुरुकुल दल छब्बीस दौड़ों से विजयी रहा। इस मैच में ब्र० अर्यदेव की खेल प्रदर्शा (बेटस मैन) के रूप में प्रशंसनीय थी। कादविक (बौलर) के रूप में ब्र० भूदेव राव भाऊ का कार्य सराहनीय रहा।

गत सप्ताह महाविद्यालय के छात्रों ने ब्र० राजेन्द्र कुमार १४ श्रेणी की सयोजकता में बेडमिंगटन के टूर्नामेंट का आयोजन किया था। जिस में ब्र० स्वतन्त्र निरूपण और ब्र० रामचन्द्र की जोड़ी विजयी हुई है। ब्र० रवीन्द्र और ब्र० जयदेव का युगल उप विजेता रहा।

शोक-समवेदना

बड़े दुःख की बात है कि गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्वान् उपाध्याय श्री वैद्यनिरञ्जन देव जी आयुर्वेदालंकार (प्रियव्रत) की विदुषी धर्म-पत्नी श्रीमती गायत्री देवी का अपने वतन बदायूँ में चार-पांच दिन की छोटी बीमारी में एकाएक देहावसान हो गया है। वे बदायूँ की स्त्री आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव के लिए गुरुकुल से बदायूँ गई थीं। बड़े उत्साह के साथ वे सामाजिक और धार्मिक कार्यों में भाग लिया करती थीं। बदायूँ स्त्री आर्यसमाज की कार्य-प्रवृत्ति तथा उन्हीं के कारण सतेज और प्राणवान् थी। श्रीयुत वैद्य जी पर आई हुई इस अकाल विपदा में समस्त कुलवासी समवेदना और सहानुभूति प्रकट करते हैं। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को शांति और सुगति प्रदान करे!

★

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।